UNIVERSAL LIBRARY

OU_178384

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H923.254 G19V Accession No. P.G. H3898

Author व्यास, गोपालप्रसाद.

Title हमारे राष्ट्रपिता. 1949.

This book should be returned on or before the date last marked belo

हमारे राष्ट्रपिता

लेखक
श्री गोपालप्रसाद व्यास

आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

प्रकाशक—
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स,
काश्मीरी गेट, दिल्ली।

प्रथम बार २०००
३१ मार्च, १९४९

मुद्रक—
राजहंस प्रेस,
दिल्ली।

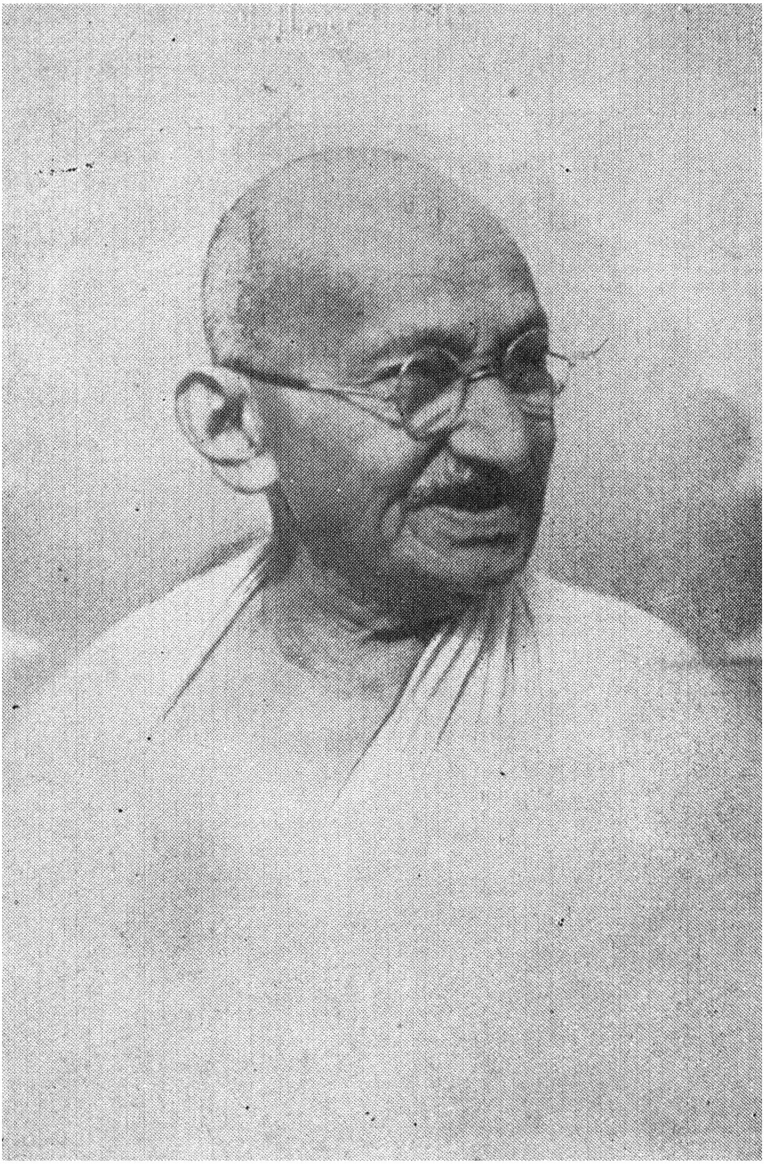

जन-गण-मन अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता !

हज़ारों वर्ष म ऐसा मसीहा एक आया था,
कि जिसने आदमी को, आदमी बनना सिखाया था।

"न मैं राज्य चाहता हूं, न स्वर्ग की इच्छा
करता हूं। मैं मोक्ष भी नहीं चाहता।
मैं तो यही चाहता हूं कि दुःख
से तपते हुए प्राणियों की
पीड़ा का नाश हो।"

आदरणीय श्री देवदास गांधी को

जिन्होंने मुझे गद्य-लेखन की ओर प्रेरित किया

सविनय

दो शब्द

मुझे अलग से कुछ नहीं कहना। गांधीजी के विस्तृत जीवन, कार्य और साहित्य में से अपनी समझ के अनुसार सार रूप सामग्री चुनकर मैंने इस पुस्तक में देने की चेष्टा की है। मेरी कोशिश यह रही है कि संक्षेप में गांधीजी के जीवन, कार्य और आदर्शों की इस प्रकार चर्चा होजाय कि औसत पाठक इसे रस के साथ पढ़ सके और उसे एक ही स्थान पर गांधीजी के सम्बन्ध में सब आवश्यक जानकारी प्राप्त होजाय। मैं अपने प्रयत्न में कहां तक सफल रहा हूं, यह तो सहृदय पाठक और बुद्धिमान आलोचक ही बता सकते हैं।

जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं तो अपने आपको गांधीजी पर कुछ लिखने का उचित अधिकारी नहीं मानता। क्योंकि मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार गांधीजी पर लिखने का सही अधिकार उसे है, जिसने राष्ट्रपिता के सिद्धान्तों को न केवल किताबों से पढ़ा और नेताओं से सुना हो, बल्कि जीवन में भी उतार लिया हो। फिर मेरा यह भी विचार है कि आज की पीढ़ी गांधीजी के महत्व को ठीक समझ भी नहीं सकेगी। गांधीजी हमारे इतने निकट रहे हैं कि उनको अपने से अलग करके सोच सकने की सामर्थ्य कम-से-कम इस पीढ़ी के हिन्दुस्तानी विचारक

में तो नहीं है। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा, मोह छूटता जायगा और गांधीजी के कार्यों का महत्व इतिहासकारों की निगाह में निखरता आयेगा। आज तो उनके गुण-गौरव की कृतज्ञ स्वर में विनत गाथा ही गाई जासकती है और वही मैंने किया है।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अनेक पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और कितने ही लेखकों के विचारों से प्रकट और अप्रकट रूप में बहुमूल्य सहायता मिली है। जहां तक बना है, मैंने यथास्थान उनका उल्लेख करने की कोशिश की है, फिर भी जो रह गये हैं और जिनका उल्लेख किया गया है, उन सबके लेखकों और प्रकाशकों का मैं हृदय से आभार स्वीकार करता हूं।

"हिन्दुस्तान", नई दिल्ली
३० जनवरी, ४८

गोपालप्रसाद व्यास

पुस्तक-परिचय

यशस्वी जीवन १-५८

जन्म और बचपन ३

संस्कार और विकास ४

सत्य और अहिंसा का पदार्थ-पाठ ६

रामनाम और धर्म की झलक ७

तीन प्रतिज्ञाएँ और विलायत-गमन ६

सदाचार और सभ्यता ११

बैरिस्टरी और उसके बाद १२

दक्षिण अफ्रीका में १३

उद्दण्ड गोरों का हमला १७

सत्याग्रह का जन्म १८

पहली सफलता १६

भारत में शुभागमन २०

चम्पारन के किसानों में २१

अहमदाबाद के मज़दूरों में २२

खेड़ा-सत्याग्रह में २३

प्रथम महायुद्ध और उसके बाद २४

गांधीजी मैदान में २५

रौलट-एक्ट २५

पंजाब हत्याकाण्ड और खिलाफत	२७
असहयोग-आन्दोलन	२९
चौरीचौरा-काण्ड	३०
राष्ट्रपति और रचनात्मक कार्यक्रम	३१
नमक-सत्याग्रह	३१
डांडी-यात्रा	३२
गांधी-इर्विन समझौता	३४
गोलमेज-परिषद और ३२ का आन्दोलन	३५
हरिजनों के लिए उपवास	३५
साम्प्रदायिक समस्या	३७
दूसरा महायुद्ध	३८
कांग्रेस की प्रतिक्रिया	३९
वैयक्तिक सत्याग्रह	४०
क्रिप्स-योजना	४१
अगस्त-क्रांति	४३
'करेंगे या मरेंगे'	४४
शिमला-कांफ्रेन्स	४६
अस्थायी केन्द्रीय सरकार	५०
नोआखाली में	५१
दासता से मुक्ति	५२
साम्प्रदायिक उत्पात	५३
महानिर्वाण	५६

अन्तिम दर्शन	५६-६७
पुण्य स्मृति	६८-७०
युगावतार गांधी	७१-७३
गांधीजी के आदर्श	७४-८६
सत्य	७५
अहिंसा	७७
सेवा-भावना	८०
गांधीवाद-समाजवाद	८२
सर्वोदय	८४
एकादश व्रत	८५
रचनात्मक कार्यक्रम	८७-६८
गांधीजी क्या चाहते थे ?	८८
चाह की पूर्ति	६०
खादी	६१
ग्राम-उद्योग	६३
बुनियादी तालीम	६४
राष्ट्रभाषा	६५
अस्पृश्यता निवारण	६६
साम्प्रदायिक एकता	६७
गांधीजी का व्यक्तित्व	६६-११२
त्याग	१०२
कर्मयोग	१०२

चरित्र-बल	१०४
नेतृत्व की कुंजी	१०६
स्वभाव और आदतें	१०६
निर्भयता और क्षमा-भावना	१११
भारत की प्रतिमूर्ति	१११
गांधीजी के उपवास	११३-११८
गांधीजी की संध्या-प्रार्थना	११६-१२८
बापू के प्रिय भजन	१२६-१३३
गांधीजी के आदर्श वाक्य	१३४-१३८
संसार की नजरों में गांधीजी	१३६-१५१
जीवन की प्रमुख तिथियां	१५२-१५६

यशस्वी जीवन

जिनके स्मरण-मात्र से हृदय में सात्विक भावों का उदय हो आता है, जिनके पुण्यचारित्र युग-युगों तक भटकी हुई मानव-जाति का पथ आलोकित करते रहेंगे, जो एक साथ ही शान्ति और क्रान्ति के सन्देशवाहक थे, उन आधुनिक युग के परम ऋषि, परम भागवत और सर्वात्म भाव से भारत में सर्वोदय की प्रतिष्ठा करने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विषय में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—"मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है। इस जगत् में जो भी विभूतिमान्, श्रीमान या प्रभावशाली है, उसको मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न समझो।" शत-प्रति-शत ठीक यही बात गांधीजी के संबंध में कही जा सकती है। 'उनकी विभूतियों का, उनके कृत्यों का, उनकी सेवाओं का, उनके त्याग और तपस्या का, न कोई माप है, न गणना है और न अंत है। वह न होते तो न मालूम आज के भारत में, अभी भी हम कितने वर्षों तक गुलामी की जंजीरों में जकड़े पड़े रहते। हमारी स्वतंत्रता के दाता यदि गांधीजी नहीं तो और कौन है? जो कुछ विभूतिमान, लक्ष्मीमान, या प्रभावशाली है, वह उनकी ही देन है, सब उनकी ही तपस्या का परिणाम है। उनके एक अंश-मात्र से यह सारा हिन्द सत्य-स्थित

है। आज यहाँ जितने नेता और कार्यकर्ता हैं, सब उनके ही तेज से प्रकाशित हो रहे हैं। वह वास्तविक अर्थों में हमारे राष्ट्र-निर्माता और राष्ट्रपिता थे।"※

गांधीजी के महान् नेतृत्व, विरल राजनीतिज्ञता, प्रचंड बुद्धि-कौशल, अडिग आत्म-विश्वास और पश्चिमी पशुबल के विरुद्ध अपूर्व अहिंसक योद्धा-वृत्ति को देखकर प्रसिद्ध विदेशी विद्वान आइन्स्टीन ने एक बार कहा था, "हो सकता है कि आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर कठिनाई से विश्वास करें कि इस प्रकार का कोई रक्त-मांस वाला पुरुष पृथ्वी-तल पर कभी उत्पन्न भी हुआ होगा!"

सृष्टि के लम्बे इतिहास में महापुरुषों की कमी नहीं। एक-से-एक महान् आत्माओं ने इस धरा-धाम पर अवतीर्ण होकर एक-से-एक लोकोत्तर कार्य किये हैं और उच्च-से-उच्च आदर्शों की स्थापना की है। लेकिन गांधीजी की जो विशेषता है वह यह कि उन्होंने सदैव आदर्श आध्यात्मिक जीवन बिताया और लाखों-करोड़ों लोगों को उस राह पर लेगये, पर न तो उन्होंने अपने आप को कभी अवतार या पैगम्बर कहा और न ही अपना कोई अलग धर्म या मत-वाद प्रवर्तित किया। उन्होंने सदैव जीवन और कर्म के समन्वय पर बल दिया और केवल कहा ही नहीं उसे करके भी दिखाया। दुनिया के इतिहास में गांधीजी अकेले राज-नीतिज्ञ थे जिन्होंने इष्ट-प्राप्ति के लिए साध्य और साधन दोनों की पवित्रता का ध्यान रखा। गांधीजी ही थे जिन्होंने राजनीति

※ बापू के चरणों में

को धर्म से समन्वित किया और अपने निराले अहिंसक उपायों-द्वारा प्रबल ब्रिटिश साम्राज्य की दाढ़ों से भारतीय स्वतंत्रता को खींच लाये।

जन्म और बचपन

कौन जानता था कि संवत् १९२५ के आश्विन कृष्ण में एक ऐसी द्वादशी भी आयेगी जब सुदामापुरी (पोरबंदर) में एक साधारण मध्यवित्त वाले वैश्य-परिवार में वह असाधारण प्रतिभा जन्म लेगी, जिससे कुल, जाति, देश ही नहीं, समस्त मानवता धन्य हो उठेगी? किसे ज्ञात था कि पोरबंदर और राजकोट के दीवान कर्मचन्द गांधी को भारत के राष्ट्रपिता का पिता होने का सौभाग्य प्राप्त होगा? तब कौन कह सकता था कि श्रीमती पुतलीबाई भारतीय स्वतंत्रता के जनक की जननी बनने वाली हैं? क्योंकि अन्य महापुरुषों के बारे में यह कहावत भले ही लागू हो कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" मगर मोहनदास गांधी के बचपन में ऐसे कोई चिन्ह नहीं थे, जिन्हें देखकर यह कहा जा सके कि यह बालक भी महापुरुष हो सकता है। कारण बचपन में न तो इनकी बुद्धि ही तीव्र थी, न इनमें बालकोचित चपलता तथा सबसे घुल-मिलने की आदत ही थी। लज्जाशील और संकोची वृत्ति के गांधी सबसे अलग-थलग रहा करते थे। उन्होंने अपने विषय में स्वयं लिखा है, "पाठशाला में पढ़ने बैठाया गया था। मुश्किल से पहाड़े सीखे होंगे, बाकी तो लड़कों के साथ गुरुजी को गाली देना सीखने के अलावा और कुछ सीखा, याद

नहीं है। इससे यह अनुमान करता हूँ कि मेरी बुद्धि मंद रही होगी और स्मरण-शक्ति कच्ची।"※

आगे जब प्रारम्भिक पाठशाला से ऊपर स्कूल और बाद में हाईस्कूल में पहुँचे तब भी यही हाल रहा। वह लिखते हैं कि, "मैं बहुत संकोची लड़का था, मदरसे में अपने काम-से-काम रखता। घंटी बजते-बजते पहुँच जाता और स्कूल बन्द होते ही घर भाग आता। क्योंकि मुझे किसी के साथ बातें करना नहीं रुचता था—मुझे यह डर भी बना रहता था कि कहीं कोई मेरा मजाक न उड़ाये।"※

संस्कार और विकास

लेकिन गांधीजी के माता, पिता, परिवार और वातावरण के संस्कार ऐसे थे जिन्होंने उन्हें महान् बना दिया।

गांधीजी के पिता कर्मचन्द या कबा गांधी बड़े सत्यप्रिय, शूर, उदार और रिश्वत से सदा दूर भागने वाले थे। उनके न्याय की प्रसिद्धि दूर-दूर तक थी। वह राज्य के बड़े वफ़ादार थे। एक बार राजकोट के ठाकुर के मान के प्रश्न पर पोलिटिकल एजेन्ट से मतभेद होगया। उसने कबा गांधी को माफी मांगने के लिए कहा, लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया। एजेन्ट ने हवालात दे दी, मगर वे टस-से-मस नहीं हुए और उसे झुकना पड़ा। सही बात पर अड़ना और असत्य का अन्तिम दम तक विरोध करने का गुण गांधीजी को पैतृक परम्परा से प्राप्त हुआ और हम कह सकते हैं कि आगे चलकर

※ आत्मकथा

उन्होंने जो सत्याग्रह की अभूतपूर्व लड़ाई लड़ी और जो सफलता प्राप्त की उसमें उनके निजी प्रयत्न और प्रयोगों का तो हिस्सा था ही, लेकिन बालक गांधी के मन पर संस्कार रूप से सत्याग्रह की छाप डालने वाले उनके पिता कबा गांधी ही थे।

यदि गांधीजी के सिद्धान्तों का विवेचन किया जाय तो उसके तल में ये तीन बातें मूलरूप से स्थिर दिखाई देंगी—सत्य, अहिंसा और आस्तिकता। गांधीजी प्रत्येक कार्य—क्या सन्धि, क्या विग्रह, क्या न्याय और क्या निर्माण, सबको आस्तिकभाव से ग्रहण करते थे। सत्य और अहिंसा द्वारा उनके कार्यों की व्यवहार में परिणति होती थी। कोई पूछे कि इन सद्वृत्तियों का विकास गांधीजी में कहाँ से हुआ तो इसका एक ही उत्तर है—उनकी माता श्रीमती पुतलीबाई।

गांधीजी की माता बड़ी साध्वी और भावुक महिला थीं। गांधीजी का परिवार श्री वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदाय का अनुगामी था। आपकी माता पुतलीबाई प्रति दिन मन्दिर जातीं और बिना भजन-सेवा के जल तक ग्रहण न करतीं। कठिन-से-कठिन व्रत रखतीं। चातुर्मास व्रत तो उन्होंने आजन्म निवाहा। लगातार दो-तीन उपवास उनके लिए मामूली-सी बात थी। एक बार चांद्रायण व्रत लिया, बीमार पड़ गईं, मगर छोड़ा नहीं। वह बड़ी व्यवहार-कुशल भी थीं। दरबार की समस्त बातों से उनका परिचय रहता था और रनवास में सदैव उनकी बुद्धि का आदर किया जाता था।

गाँधीजी यों बचपन में स्वभाव के संकोची और साधारण

कोटि के बालक थे पर माता-पिता के पवित्र आदर्शों के संस्कार कच्ची उम्र में उनके मन पर जमते रहे और वही कालान्तर में समय पाकर विकसित, पल्लवित और पुष्पित हो उठे और एक दिन आया जब समस्त राष्ट्र को उस महाबोधि वृक्ष के अमृत-फल प्राप्त हुए।

बचपन में गांधीजी पर दो नाटकों के भी बहुत बड़े संस्कार पड़े, जिनमें से एक को उन्होंने पढ़ा और दूसरे को देखा। "श्रवण-पितृ-भक्ति" नाटक को पढ़कर और काठ के बक्स में शीशों से तस्वीर दिखाने वालों से श्रवणकुमार का अपने माता-पिता को कांवर में बैठाकर लेजाने वाला दृश्य देखकर उन पर पितृभक्ति का गहरा असर पड़ा। वह मन में श्रवण जैसा बनने का विचार करने लगे। सत्यवादी हरिश्चन्द्र के नाटक को देखकर जो उनके मन पर प्रतिक्रिया हुई वह उन्हींके शब्दों में इस प्रकार है, "अपने मन में इस नाटक को मैंने सैकड़ों बार दुहराया होगा। हरिश्चन्द्र के सपने आया करते। यही धुन लगी कि हरिश्चन्द्र की तरह सब सत्यवादी क्यों न हों? यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्र के जैसी विपत्तियां भोगना और सत्य का पालन करना ही सच्चा सत्य है।"*

सत्य और अहिंसा का पदार्थ-पाठ

इस प्रकार सत्यनिष्ठा गांधीजी में बचपन से ही घर कर गई। एक बार एक इन्स्पेक्टर मुआइने के लिए आये। उन्होंने गांधीजो

* आत्मकथा

से पांच शब्द लिखवाये। केटल (Kettle) के हिज्जे गांधीजी ने गलत लिखे। मास्टर ने बूट की ठोकर देकर चेताया कि वह आगे के लड़के की स्लेट देखकर हिज्जे ठीक लिखलें, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया।

एक बार उन्होंने चोरी भी की। सोने के कड़े का टुकड़ा बेच दिया; पर बाद में उन्हें लगा, कि यह उचित नहीं किया और पिताजी की श्रद्धा के प्रति यह विश्वासघात है तो वह आत्मग्लानि से भर उठे। तत्काल सारी घटना की सूचना उन्होंने पिताजी को पत्र में लिखकर दी और क्षमा मांगी। पुत्र की इस सत्यवादिता और निर्मलता से पिता गद्गद् हो उठे और उनकी आँखों से स्नेह कण बरस उठे। इन स्नेहाश्रुओं के प्रेम-बाण ने गांधीजी के हृदय को बेध दिया। ऐसी शांतिमय क्षमा की गांधीजी को कल्पना तक नहीं थी। उन्होंने कहा है, "मेरे लिए यह अहिंसा का पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृ-प्रेम का ही अनुभव हुआ था, पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा का नाम दे सकता हूँ। ऐसी अहिंसा के व्यापक रूप धारण करने पर कौन उससे अछूता रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसा की शक्ति अनुभव करना शक्ति से परे है।"❀

रामनाम और धर्म की झलक

गांधीजी बचपन में बड़े डरपोक थे। अँधेरे में कोई चोर, भूत या सांप का नाम ले देता तो रोने लगते। रात को अकेले

❀ आत्मकथा

कहीं जाने की हिम्मत नहीं पड़ती। अँधेरे में यही लगता रहता कि इधर से भूत आया, उधर से साँप निकला, कहीं से कोई चोर न आजाय ?

गांधीजी की सगाई ७ वर्ष की अवस्था में और विवाह १३ वर्ष की आयु में होगया था। डर और संकोच गांधीजी में इतनी अधिक मात्रा में बढ़े हुए थे कि वह अपने भय की बात अपनी पत्नी तक से कहते सकुचाते थे, क्योंकि उनकी पत्नी श्रीमती कस्तूरबाई भय क्या है इससे परिचित ही नहीं थी। सांप का डर तो उन्होंने जाना ही नहीं, अँधेरे में भी यों ही चली जाती थीं।

गांधीजी की इस दयनीय दशा पर घर की एक नौकरानी को तरस आगया और उसने उनसे कहा कि जब भय मालूम हो तो राम-नाम का स्मरण करना चाहिए, राम-नाम के लेते ही भूत भाग जाते हैं! गांधीजी पर इस शिक्षा का बड़ा प्रभाव पड़ा और सदैव के लिए राम उनके मन में रम गये और भय जाता रहा।

इन्हीं दिनों उन्होंने सब धर्मों के प्रति आदर करना सीखा। गांधीजी अपने माता-पिता के साथ वैष्णव-मंदिर, शिवालय तथा राम-मंदिर तो जाते ही रहते थे। इसके अतिरिक्त उनके पिताजी के पास प्रायः जैनसाधु धर्म तथा व्यवहार-चर्चा के लिए आया करते थे। पिताजी की मुसलमान तथा पारसियों से भी मित्रता थी। इस प्रकार के वातावरण का गांधीजी के मन पर यह असर हुआ कि वह कट्टरपंथी न बनकर सब धर्मों के प्रति आदर-भाव और आस्था रखने लगे। उसी समय एक चमत्कारी छप्पय उनके हाथ लगा—

पाणी आपने पाय, भलुं भोजन तो दीजे;
आवी नमावे शीश, दंडवत कोडे कीजे।
आपन घासे दाम, काम मोहरे मुं करीए,
आप उगारे प्राण, ते तणा दुःखमां मरीए।
गुण केडे तो गुण दशगुणो; मन-वाचा-कर्मे करी;
अवगुण केडे जे गुण करे, ते जग मां जीत्यो सही।

इसका आशय यह कि जो अपने को जलपान कराये उसे भोजन कराना चाहिए और जो अपने को शीश नवाये उसे दंडवत करनी चाहिए। जो अपना काम पैसे-भर करे उसका काम हमें मोहर-भर करना चाहिए और जो अपने प्राण बचाये उसके दुःख में पहले प्राण दे देने चाहिए। जो अपना भला करे उसका मन, वचन और कर्म से दशगुना भला करना चाहिए और संसार में जीना तो उन्हींका सच्चा है जो अवगुण के बदले में गुण किया करते हैं।

गांधीजी कहते हैं, "इस नीति विषयक छप्पय ने मेरे हृदय में घर कर लिया। अपकार का बदला अपकार नहीं वरन् उपकार ही होना चाहिए, यह वस्तु जीवन-सूत्र बन गई। उसने मेरे मन पर अपनी सत्ता चलानी शुरू कर दी। अपकारी का भला चाहना और करना इसका मैं अनुरागी बन गया।

तीन प्रतिज्ञाएं और विलायत-गमन

बचपन गांधीजी का पोरबंदर में बीता। वहाँ की एक पाठशाला में आपने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। कोई सात वर्ष की

उम्र में, जब आपके पिता 'राजस्थानिक कोर्ट' के सदस्य होकर राजकोट आगये तो वहाँ आपको एक ग्रामीण पाठशाला में दाखिल कराया गया। पाठशाला से ऊपर के स्कूल में और वहां से हाईस्कूल तक पहुँचने में १२ वर्ष लगे। जब हाईस्कूल में पढ़ते थे, विवाह होगया। हाईस्कूल में आने पर बुद्धि कुछ खुली और मासिक छात्र-वृत्तियां भी मिलने लगीं। सन् १८८७ में आपने मैट्रिक पास कर लिया और भावनगर कालेज में दाखिल हुए। लेकिन कालेज की पढ़ाई में मन नहीं लगा। प्रोफेसरों के व्याख्यानों में न रस आता, न वे समझ में ही आते। जैसे-तैसे पहला सत्र पूरा करके घर आये।

इधर यह तो कालेज की पढ़ाई से उकता ही रहे थे, उधर पिताजी का देहावसान होजाने से यह प्रश्न पैदा हुआ कि उनकी गद्दी सम्हालने के लिए आपको विलायत जाकर बैरिस्टरी पास कर आनी चाहिए। लेकिन इस मार्ग में दो बाधाएं थीं—एक तो पैसे का प्रबन्ध और दूसरा माताजी की स्वीकृति। बड़े भाई ने जैसे-तैसे पैसे का प्रबंध किया, लेकिन माताजी ने कहा कि तू पहले प्रतिज्ञा कर कि वहाँ जाकर मांस नहीं खायेगा, शराब नहीं पियेगा और परस्त्री का संग नहीं करेगा, तब जाने दूंगी। गांधीजी ने सहर्ष ये प्रतिज्ञाएं धारण कीं और केवल विलायत-प्रवास तक ही नहीं, आजन्म उनको निबाहा। इस प्रकार १८ वर्ष की उम्र में अपनी पत्नी और उसकी गोद में एक बच्चा छोड़कर, जाति से बहिष्कृत होकर, आप ४ सितम्बर, १८८८ को बैरिस्टरी पढ़ने विलायत चले गये।

सदाचार और सभ्यता

गांधीजी ने विलायत में माता के सम्मुख की हुई अपनी प्रतिज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया। वहां वह बड़ी सादगी और कमखर्ची से रहे। क्योंकि निरामिष भोजन का व्रत लेचुके थे इसलिए भोजन संबंधी साहित्य का आपने वहाँ रह कर खूब अध्ययन किया और सदैव के लिए निरामिष भोजन के पक्षपाती बन गये। विलायत में इसका प्रचार करने के लिए आपने एक संस्था भी बनाई।

पश्चिमी सभ्यता आप पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकी। अपनी सत्यप्रियता के कारण आप हर बुराई से बचते गये। जब एक युवती आपको प्रेम-सूत्र में बांधने का प्रयत्न करने लगी तो आप ने साफ कह दिया कि मैं विवाहित हूँ। इंगलैंड के मित्रों ने आप पर नाचने, गाने, भाषण देने, सैर करने और फैशन का भूत सवार करना चाहा। गांधीजी थोड़े उधर आकर्षित हुए भी, पर तत्काल सम्हल गये और विलायती सभ्य बनाने वाले अपने शिक्षक को इस आशय का एक पत्र लिखा—

"मुझे कहां इंगलैंड में जिन्दगी बितानी है? लच्छेदार भाषण देना सीखकर भी क्या करूंगा? नाच-नाचकर मैं कैसे सभ्य बनूंगा? वायोलिन तो देश में भी सीखा जा सकता है। मैं तो विद्यार्थी हूँ। मुझे तो विद्या-धन संग्रह में लगना चाहिए। मुझे अपने धंधे से संबंध रखने वाली तय्यारी करनी चाहिए। अपने सदाचार से मैं सभ्य समझा जा सकूं तो ठीक है, नहीं तो मुझे

यह लोभ छोड़ देना चाहिए।※

वहीं से आपने गीता के मर्म को समझा। गीता के स्वाध्याय से सद्वृत्तियों का दिन-पर-दिन विकास होता गया। बायबिल, बुद्ध-चरित्र और थियोसिफिस्ट सोसायटी की तरफ आपका झुकाव इन्हीं दिनों हुआ और आप दिन-पर-दिन आस्तिक भावों से भरते गये।

बैरिस्टरी और उसके बाद

सदाचार और सादगी से अपना स्वाध्याय चालू रखते हुए गांधीजी ने नौ महीने के अथक परिश्रम के बाद १० जून सन् १८९१ में बैरिस्टरी पास करली और १२ जून को वापस हिन्दुस्तान लौट पड़े।

गांधीजी बैरिस्टरी तो लेकर लौटे लेकिन इस बीच उनकी परम श्रद्धास्पद और स्नेहमयी मां उन्हें सदैव के लिए छोड़ गई। घर पहुँचने पर जब आप को यह समाचार सुनाया गया तो आप सन्न रह गये। गांधीजी का कहना है कि मुझे पिताजी की मृत्यु से अधिक आघात माताजी के मृत्यु-समाचार ने पहुँचाया था।

गांधीजी ने बैरिस्टरी अवश्य की, परन्तु हिन्दुस्तान में आप की वकालत जम नहीं सकी। ५-६ महीने बंबई रहे, मगर सफल नहीं होसके। अदालत में जाते तो पैरवी भूल जाते। कुछ बोलने खड़े होते तो हाथ-पैर कांपने लगते। निराश होकर आप राजकोट लौट आये। अलग दफ्तर खोला। अर्जियाँ लिखने से ३००) के करीब आमदनी होने लगी। लेकिन वह भी भाई की सिफारिश का परिणाम था।

※ आत्मकथा

इसी बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने गांधीजी की आत्मा को जाग्रत कर दिया। बड़े भाई के कार्य के लिए आप काठियावाड़ में एक परिचित गोरे से मिलने गये तो उसने बिना पूरी बात सुने ही आपको चपरासी से निकलवा देने का हुक्म दिया। यह वह पहली चोट थी जो घर कर गई और इसने आखिर १५ अगस्त, ४७ को अंग्रेजों को भारत से चले जाने को मजबूर कर दिया।

इस घटना से आपका मन काठियावाड़ से ऊब गया। उद्विग्न मन कहीं अन्यत्र जाने को तलाश में था कि पोरबंदर की एक मेमन फर्म दादा अब्दुल्ला एण्ड कंपनी ने अपने एक मुकदमे की देखरेख में आपको अफ्रीका आने का निमंत्रण दिया। फर्स्ट क्लास का किराया, मुफ्त रहन-सहन तथा भोजन और १०५ पौंड मेहनताना तय करके आप १८९३ में अफ्रीका के लिए विदा हो गये।

दक्षिण अफ्रीका में

गांधीजी यदि अफ्रीका न गये होते तो स्थिति आज दूसरी ही होती। न कोई उन्हें कर्मवीर कहता, न महात्मा। न उन्होंने सत्याग्रह के मर्म को समझा होता और न अहिंसा की शक्ति का ही उन्हें भान हुआ होता। दक्षिण अफ्रीका में ही उन्होंने जाना कि भारतवर्ष गुलाम है और वहां के भारतीयों को किस अपमान-जनक स्थिति में अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है! उन्होंने शासित और शासक के भेद को यहां स्पष्टतया अनुभव किया।

जनता का विश्वास प्राप्त करने और उसके निकट सम्पर्क में आने की कला भी उन्होंने यहीं सीखी। अपनी बात को प्रभावपूर्ण रीति से अधिकारियों तक पहुंचाना उन्होंने अफ्रीका में ही रहकर जाना। पत्रकार भी वह अफ्रीका में ही बने। यहाँ से उन्होंने "इंडियन ओपिनियन" नामक पत्र निकाला। भारतीयों के जनमत को संगठित करने और उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिए उन्होंने "नैटाल इंडियन कांग्रेस" नामक संस्था को जन्म दिया। अपने आदर्शों को कार्यान्वित करने के लिए यहीं पहले पहल "फिनिक्स आश्रम" खोला गया। उनके जीवन के कई निजी प्रयोग, जिन्होंने उन्हें महात्मा बना दिया, यहीं प्रारम्भ हुए, जैसे सत्याग्रह, शारीरिक श्रम, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि। यहीं उनकी धर्म की खोज प्रारम्भ हुई और हिन्दू-धर्म के व्यापक महत्व को वह समझने में सफल हुए। उनके राजनीतिक गुरु स्वर्गीय महामान्य गोखले से भी उनकी घनिष्ठता दक्षिण अफ्रीका में ही हुई। हम कह सकते हैं कि गांधीजी के महान् व्यक्तित्व के निर्माण का श्रेय यदि किसी को है तो वह उनके अफ्रीका-प्रवास को ही है। भटके हुए गांधीजी को एक प्रकार से दक्षिण अफ्रीका की परिस्थितियों ने जीवन-दिशा प्रदान कर दी।

अफ्रीका में कदम रखते ही लड़ाई की शुरुआत हुई। अदालत में मजिस्ट्रेट ने आपसे पगड़ी उतारने के लिए कहा। आपने इन्कार कर दिया और अदालत से उठकर चले आये। प्रिटोरिया गये तो पहले दर्जे से उतरकर तीसरे दर्जे में चले जाने को कहा

गया। इन्कार करने पर हाथ पकड़कर धकेल दिया गया और सामान बाहर फेंक दिया गया। आगे चार्ल्सटाउन से जोहान्सबर्ग तक घोड़ागाड़ी पर जाना था। वहां भी आपको गोरों के साथ न बिठाकर कोचवान के साथ बिठाया गया और इतना ही नहीं, थोड़ी देर बाद आपको टाट बिछाकर एक पायदान पर बैठने को विवश किया गया। इन्कार करने पर बुरी तरह मार पड़ी। भारतीय होने के कारण न आप वहाँ पहले दर्जे में सफर कर सकते थे। न होटलों में ठहर सकते थे। और-तो-और फुटपाथ पर भी चलने से आपको धकेल दिया गया। और लात लगाई गईं। उस समय अफ्रीका में हिन्दुस्तानी कितना ही सम्भ्रान्त और पढ़ा-लिखा क्यों न हो कुली, सामी या गिरमटिया के अतिरिक्त कुछ न था। ट्रांसवाल में तो और भी दुर्गति थी। वहाँ भारतीय मताधिकार से वंचित थे, रात को बिना परवाना पाये वे नहीं निकल सकते थे, जमीन की मालिकी उन्हें नहीं मिल सकती थी और इन सबसे ऊपर बिना ३ पौंड दिये वहाँ प्रवेश तक नहीं पा सकते थे।

गांधीजी ने इस अन्याय और रंग-विद्वेष से भरे भेद-भाव के प्रति आन्दोलन करने के लिए प्रिटोरिया में एक मंडल की स्थापना की। यहाँ भारतीयों की एक सभा में उन्होंने पहला भाषण दिया। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों ने एक साथ गांधीजी और अपने अधिकारों से परिचय प्राप्त किया। अखबारों में गांधीजी की चर्चा होने लगी। रेलवे अधिकारियों ने भारतीयों को बे-मन से पहले दर्जे के टिकट देने की सुविधा देनी पड़ी।

इधर गांधीजी जिस मुकदमे के सिलसिले में आये थे उसमें उन्होंने बजाय दोनों दलों के लड़ाने और तवाह कर डालने के एक शानदार समझौता करा दिया और वह हिन्दुस्तान को लौटने लगे। लेकिन "मेरे मन कछु और है कर्ता के कछु और" जब आपको विदाई का भोज दिया जारहा था, तभी आपकी निगाह अखबार में प्रकाशित एक समाचार पर पड़ी जिसमें हिन्दुस्तानियों से मताधिकार छीन लेने का बिल धारासभा में पेश होने वाला था। आपने उपस्थित जनों से इस अन्याय की चर्चा की और विदाई का भोज परामर्श-सभा में ही परिणत नहीं हुआ, लोगों ने गांधीजी को भारत नहीं आने दिया और बिल के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया गया।

उसी रात असेम्वली में पेश करने के लिए एक अर्जी तैयार की गई। सरकार से भी तार द्वारा प्रार्थना की गई कि वह असेम्बली की कार्रवाई कुछ दिन को रोक दे। परिणामस्वरूप असेम्बली की कार्रवाई दो दिन के लिए रुक गई। आन्दोलन का असर तो हुआ मगर बिल का पास होना न रुका। लेकिन इससे भारतीयों में उत्साह की एक नई लहर फैल गई। एक महीने के अंदर ही उपनिवेश-मंत्री लार्ड रिपन के नाम १०,००० दस्तखतों से एक दूसरी अर्जी भेजी गई। उसकी प्रतियाँ भारतीय नेताओं, समाचार-पत्रों और विलायत में स्थान-स्थान पर भेजी गई। देशी और विदेशी अखबारों ने आन्दोलन का समर्थन किया और सफलता की आशा होने लगी।

गांधीजी जब फिर हिन्दुस्तान लौटने लगे तो लोगों ने इन्हें नहीं आने दिया। आपका पूरा खर्चा उठाने को लोग तैयार थे। पर गांधीजी ने सार्वजनिक धन को अपने ऊपर खर्च न होने दिया और वकालत करने लगे। वकालत तो जीवन-निर्वाह का साधन-मात्र थी। आपने अब अपने-आपको पूरा सार्वजनिक कार्यों के लिए उत्सर्ग कर दिया। १८९४ में वहाँ आपने 'नेटाल-इंडियन कांग्रेस' की स्थापना की, दो ट्रेक्ट लिखे, कुली-प्रथा के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा और १८९४ में जब नेटाल सरकार ने भारतीय कुलियों पर २५ पौंड सालाना कर लगाने का बिल तैयार किया तो कांग्रेस की तरफ से आन्दोलन छेड़कर उसे ३ पौंड करा दिया।

उद्दण्ड गोरों का हमला

इस बीच आप एक बार भारत आये और अपने परिवार को साथ लेकर अफ्रीका लौटने लगे। दक्षिण अफ्रीका में, और लौटने पर भारत में, आपने अफ्रीकी अन्याय के विरुद्ध जो प्रबल आन्दोलन छेड़ा था, उससे गोरे बौखला उठे और चिल्लाने लगे कि गांधी को अफ्रीका मत आने दो। बहुत दिनों तक डरबन में आपका जहाज रोक रखा गया। गोरे बेहद उद्दंड हो उठे। इसलिए चुपचाप एक शाम आपको जहाज से उतारा गया; फिर भी रास्ते में घेर लिया गया। आप पर कंकड़, पत्थर और डंडे बरसाये गये पगड़ी गिरा दी गई और बुरी तरह पीटा गया। पुलिस सुपरिंटेंडेन्ट की पत्नी के आजाने पर मुश्किल से जान बची।

जैसे-तैसे रुस्तमजी के बंगले पर पहुँचे। वहाँ भी आपको आ घेरा। पुलिस सुपरिंटेंडेंट वेष बदलकर आपको थाने लेगये। इस घटना की समाचार-पत्रों में बड़ी चर्चा हुई। भारतीय बड़े उत्तेजित हुए पर आपने मुकदमा चलाने से इन्कार कर दिया।

अब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका की भारतीय राजनीति में कमर कसकर कूद पड़े। उन्होंने भारतीयों के व्यापार और नेटाल के आवागमन के सिलसिले में बनने वाले दो बिलों का घोर विरोध किया। बोअर-युद्ध में आपने ११०० स्वयंसेवकों को सेवा-कार्य के लिए तैयार किया। डरबन में प्लेग फैलने पर सेवा-कार्य में डट गये। भारत में जब दुर्भिक्ष पड़ा तो अफ्रीका से आपने मदद भेजी। बीच में आप एक बार भारत फिर आये। कलकत्ता कांग्रेस में बिना अपना परिचय दिये स्वयंसेवक का काम किया और बंबई आकर कानूनी धन्धा भी शुरू किया। लेकिन दक्षिण अफ्रीका आपको फिर खींच लेगया। इस बार आपने "ट्रांसवाल ब्रिटिश इन्डियन एसोसियेशन" कायम किया, "इन्डियन ओपिनियन" अखबार भी निकाला, जोहान्सबर्ग की प्लेग में सेवा-कार्य किया और १६०६ के जुलू-संघर्ष में अपनी सराहनीय सेवाएँ अर्पित कीं।

सत्याग्रह का जन्म

१६०६ में ट्रांसवाल सरकार ने फिर एक बड़ा अपमानजनक "ड्राफ्ट एशियाटिक ला एमेंडमेंट बिल" कौंसिल में पेश किया। इसके अनुसार प्रत्येक भारतीय को ट्रांसवाल में रहने पर पर-

वाना लेना पड़ता; हर व्यक्ति के दशों अंगुलियों के निशान लिये जाते, शरीर के चिन्ह नोट किये जाते और यह परवाना सदा अपने पास रखना पड़ता। चारों ओर इस बिल के विरोध में आग भड़क उठी। ट्रांसवाल में सभा हुई। लोगों ने अन्तिम दम तक बिल का विरोध करने की शपथ ली, पर बिल पास हो गया। गांधीजी विलायत गये और बड़ा आन्दोलन किया। सरकार घबरा गई और उसने ट्रांसवाल को स्वायत्त शासन दे दिया। इससे स्थिति और भी विषम होगई। १ अगस्त परवाने लेने का दिन था। उस दिन धरना दिया गया। गिरफ्तारियाँ हुईं। आप भी गिरफ्तार किये गये और दो माह की सजा हुई। दमन और आन्दोलन बढ़ते गये। अन्त में जनरल स्मट्स से समझौता हुआ। परवाना कानून रद्द करके उसे भारतीयों की इच्छा पर छोड़ दिया गया। लेकिन स्मट्स वचन से फिर गये और कानून रद्द नहीं हुआ। परिणामस्वरूप आन्दोलन ने बड़ा जोर पकड़ा। परवाने होली में जला दिये गये। गिरफ्तारियों का जोर फिर बढ़ा। आप फिर गिरफ्तार कर लिये गये। इस बीच गोखले भारतीयों की स्थिति का अध्ययन करने अफ्रीका गये। सरकार ने उन्हें भी कानून रद्द करने का विश्वास दिलाया मगर पूरा नहीं किया।

पहली सफलता

अफ्रीका की सरकार के बार-बार के वचन-भंग और अन्याय का यह परिणाम हुआ कि १३ सितम्बर, १९१३ को जो

आन्दोलन फिर शुरू हुआ तो उसके वेग को सरकार नहीं रोक सकी और उसे घुटने टेक देने पड़े। गांधीजी २,०२७ पुरुषों, १२७ स्त्रियों और ५७ बच्चों के सत्याग्रही दल के साथ बिना परवाने लिये ट्रांसवाल की ओर बढ़े। रास्ते में दो बार आपको गिरफ्तार किया गया। बड़ी यातनाएं दीं; पर आप टस-से-मस नहीं हुए। और इस बार जनरल स्मटस को झुकना पड़ा। तीन पौंड का कानून रद्द हो गया, भारतीय विवाहों को जायज माना गया, सत्याग्रही छोड़ दिये गये और शेष अन्यायों के लिए लिखित आश्वासन देने पड़े। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों के लिए गांधीजी लगातार आठ वर्ष लड़े और ३० जून, १९१४ में आखिर सफलता प्राप्त कर ही ली।

भारत में शुभागमन

गांधीजी १९१४ में भारत लौटे। उस समय देश का राजनैतिक वातावरण नेहरूजी के शब्दों में इस प्रकार था—"राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान बहुत फीका मालूम होता था। राजनीति के बरसाती नाले बहते और लोप होजाते थे।"

ऐसे समय भारतीय राजनीति में गाँधीजी का आगमन वरदान की तरह सिद्ध हुआ। अफ्रीका में उन्होंने जो स्वतंत्रता का संग्राम लड़ा था उससे देश में उनकी बड़ी इज्जत हो गई थी और इसलिए जब वह भारत आये तो यहाँ उनका बड़ा हार्दिक स्वागत किया गया। गांधीजी आते ही राजनीति में नहीं उलझे। उन्होंने अपने तरीके से ठहरकर, सोच और समझकर काम की शुरुआत

की। पहले उन्होंने छोटे-छोटे कार्यों को हाथ में लिया और जनता के सीधे सम्पर्क में आने लगे। उन्होने सबसे पहले बंबई के गवर्नर और दिल्ली से लिखापढ़ी करके वीरमगाम की जकात बंद करवा दी, फिर सत्याग्रह की महान तैयारी के लिए अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की और अंत में जब देखा कि जनमत जाग्रत हो चला है तो उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया और सरकार को ३१ जुलाई का नोटिस देकर गिरमिटिया-कानून या कुली-प्रथा को बंद करवा दिया।

चम्पारन के किसानों में

इन छोटी-छोटी विजयों का परिणाम यह हुआ कि संत्रस्त भारतीय क्या छोटी, क्या बड़ी हर घटना के हल के लिए गाँधीजी की ओर देखने लगे। गरीबों की आत्मा के स्वर उनके मुख से "गांधीजी की जय" के रूप में निकलने लगे। बिहार में एक ऐसी ही समस्या उत्पन्न हुई। वहां गोरे लोग नील का काम करते थे। उन्होंने 'तीन कटिया' नाम से एक ऐसा अत्याचार मचा रखा था कि किसान को अपनी जमीन के तीन बटा बीस हिस्से में इन लोगों के लिए जबरन नील की खेती करनी होती थी। इस दुष्ट प्रथा के उन्मूलन के लिए आप १५ अप्रेल १९१७ को चम्पारन गये। आपको २४ घंटे में जिला छोड़ देने का हुक्म हुआ। गिरफ्तार हुए, मुकदमा चला, पर उठा लिया गया और आपको जाँच करने की सुविधा दी गई। गाँव-गाँव जाकर आपने ७००० किसानों के बयान लिये। परिणाम-

स्वरूप जाँच कमेटी नियुक्त हुई और १०० वर्ष पुरानी 'तीन कठिया' आजन्म के लिए बन्द कर दी गई।

राजेन्द्र बाबू ने लिखा है, "जाँच का नतीजा यह हुआ कि चम्पारन के मुकामी अफसर बहुत घबराने लगे। उनमें से कितनों के दिलों पर यह असर हुआ कि चम्पारन से अंग्रेजी राज उठा जारहा है। लोग यह समझने लगे कि गांधीजी ही सबसे बड़े अफसर हैं, जिनके सामने जिला कलक्टर और मजिस्ट्रेट के खिलाफ भी शिकायत की जा सकती है।[1]

चम्पारन की विजय से सारे बिहार में जागृति की लहर दौड़ गई और प्रान्त गांधीजी के आदर्शों में रंग उठा। यों गांधीजी गुजरात के रहने वाले थे, पर चम्पारन-कांड का वह असर हुआ कि बिहार गांधीजी का प्रान्त कहलाने लगा। गांधीजी की कार्य-पद्धति ही ऐसी थी। राजेन्द्र बाबू का कहना है कि, "पहली मुलाकात में ही हम लोग अपनी इच्छा से गांधीजी के फाँस में फँस गये। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उनके साथ केवल प्रेम ही नहीं बढ़ा, उनकी कार्य-पद्धति पर विश्वास भी बढ़ता गया। चम्पारन का काण्ड समाप्त होते-न-होते हम सबके-सब उनके अनन्य भक्त और उनकी कार्य-प्रणाली के पक्के हामी बन चुके थे।"[2]

अहमदाबाद के मजदूरों में

चम्पारन के किसानों का संकट कटा ही था कि अहमदाबाद के मजदूरों ने आपको पुकारा। मजदूर-संघ के निमंत्रण

[1], [2], आत्मकथा, राजेन्द्र बाबू।

पर आप वहाँ गये और उनकी शिकायतें ठीक समझकर उन्हें हड़ताल की सलाह दी। मजदूरों से आपने अहिंसक होने, भिक्षान्न न खाने और निर्णय पर दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा ली। मजदूर पहले सप्ताह तो मजबूत रहे, पर बाद में फिसलते दिखाई दिये। गांधीजी ने इस पर तीन दिन का उपवास किया और मिल-मालिकों और मजदूरों में फैसला होगया। सरदार पटेल, श्री शंकरलाल बैंकर और श्रीमती अनसूया बहन यहीं से परिचय में आये।

खेड़ा-सत्याग्रह में

इधर खेड़ा में फसल चौपट हो गई थी। यद्यपि कानून में यह था कि चार आना से कम फसल हो तो लगान माफ कर दिया जाय, पर सरकार से प्रतिनिधि-मंडल मिला, अर्जी-तार दिये गये, कौंसिल तक में आन्दोलन हुआ, लेकिन सरकार टस-से-मस नहीं हुई तो गांधीजी की पुकार हुई। गांधीजी ने सत्याग्रह छेड़ दिया। किसानों ने लगान न देने की प्रतिज्ञा ली। गाँव-गाँव घूमकर किसानों से प्रतिज्ञा-पत्र भराये गये। बड़े जोश से सत्याग्रह चला। सरकार ने फसलें जब्त करलीं, ढोर बेच दिये, मनचाहा माल घरों से उठा लेगई, पर किसान अडिग रहे। नीलामी के साथ गिरफ्तारियाँ भी हुईं, पर आन्दोलन फैलता ही गया और अंत में सरकार को हार माननी पड़ी और गरीब लोगों का लगान माफ कर दिया गया। खेड़ा-सत्याग्रह के परिणाम-स्वरूप सारे गुजरात में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत होगई। गुजरात-

रत्न सरदार पटेल का निर्माण इसी सत्याग्रह से हुआ। गांधीजी ने लिखा है, "वल्लभभाई ने अपने आपको इस लड़ाई में पहचाना। अगर और कुछ नहीं तो एक यही परिणाम कुछ ऐसा-वैसा नहीं था। गुजरात के प्रजा-जीवन में नया तेज आया, नया उत्साह भर गया पाटीदारों को अपनी शक्ति का भान हुआ, जो कभी नहीं मिटा। सत्याग्रह ने खेड़ा के द्वारा गुजरात में जड़ जमाई।[1]

प्रथम महायुद्ध और उसके बाद

एक तरफ गांधीजी भारत की अंग्रेज सरकार के विरुद्ध प्रान्त-प्रान्त और वर्ग-वर्ग में विद्रोह का बिगुल बजा रहे थे, दूसरी तरफ जब युद्ध छिड़ा तो उन्होंने गरमदलीय नेताओं के विरोध के बावजूद सरकार का साथ दिया। यद्यपि आपकी सरकारी सहायता से उग्र विचारवाले सहमत नहीं थे, लेकिन आपके व्यक्तित्व देशप्रेम, लगन, निष्ठा और तत्परता की छाप उनके हृदयों पर निरन्तर गहरी पड़ती जारही थी।

इस युद्ध-सहायता का परिणाम लेकिन विपरीत निकला। युद्ध के बाद में जब भारतीय अपनी सहायता का उपहार पाने की कल्पना कर रहे थे, तब उसके बदले में निकम्मी माण्टफोर्ट सुधार-योजना सामने आई और राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव ही उखाड़ फेंकने के लिए रौलट-रिपोर्ट निकली।

देश वैसे ही युद्ध की आपदाओं से त्रस्त था। पंजाब में ओडा-

---

[1] आत्मकथा

यर ने बड़ी सख्ती से चन्दा और रंगरूट जमा किये थे। पंजाब में हिन्दू, मुसलमान, सिख सब दुःखी थे। उधर तुर्की के विरुद्ध भारतीय फौजें लड़ाने के कारण मुसलमान खिलाफ होउठे। उस समय देश की हालत ऐसी थी कि नरम-दलवाले तक कड़े पड़ गये।

गांधीजी मैदान में

सरकार ने इन विरोध-चर्चाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और रौलट-एक्ट जबरन पास कर दिया गया। यह १६१६ के प्रारंभ की बात थी। गांधीजी इस समय प्राणान्तक बीमारी से थोड़ा स्वास्थ्य-लाभ कर ही पाये थे कि रौलट-एक्ट की बात उनके कान में पड़ी। नेहरूजी ने लिखा है, "रोग-शय्या से उठते ही उन्होंने (गांधीजी) वाइसराय से प्रार्थना की थी कि वह इस बिल को कानून न बनने दें। इस अपील की उन्होंने, दूसरी अपीलों की तरह, कोई परवाह नहीं की और उस हालत में गांधीजी को अपनी तबियत के खिलाफ इस आन्दोलन का अगुआ बनना पड़ा, जो उनके जीवन में पहला भारतव्यापी आन्दोलन था। उन्होंने सत्याग्रह-सभा शुरू की, जिसके मेम्बरों से यह प्रतिज्ञा कराई गई थी कि उन पर लागू किये जाने पर वे रौलट-एक्ट को न मानेंगे। दूसरे शब्दों में उन्हें खुल्लम-खुल्ला और जान-बूझकर जेलखाने की तैयारी करनी थी।"[1]

रौलट-एक्ट

बिल जैसे ही कानून बनकर गजट में प्रकाशित हुआ गांधीजी

---

[1] मेरी कहानी—नेहरू

को रात भर नींद नहीं आई। जरा आँख झपकी तो स्वप्न में एक विचार सूझा। सवेरे राजाजी को बुलाकर कहा, इस कानून के जवाब में हमें सारे देश में हड़ताल करानी चाहिए। एक दिन लोग २४ घटे का उपवास रखें और काम-धंधे बंद रखे जायं। हड़ताल के लिए ६ अप्रेल नियत की गई।

न जाने सारे हिन्दुस्तान में गांधीजी का मंत्र कैसे फैल गया, हिन्दू और मुसलमान कंधे-से-कंधा भिड़ाकर खड़े होगये। जबर्दस्त हड़ताल हुई, सरकार घबरा गई और दमन पर उतर आई। दिल्ली में डटकर गोलियां चलीं। लाहौर और अमृतसर में भी यही हुआ। बंबई में सोलहों आना हड़ताल रही। सरकारी आज्ञा भंग करके गांधीजी की जब्त पुस्तकें छाप-छाप करके बेची गईं। गांधीजी ने बिना डिक्लेरेशन के सत्याग्रह पत्र निकाला।

सरकार अब बुरी तरह भड़क गई। पंजाब में फौजी कानून लगा दिया गया। गाँधीजी जब वहाँ जाने लगे तो उन्हें गिरफ्तार करके वापस बंबई भेज दिया गया। बम्बई में जन-समुदाय पर घोड़े दौड़ाये गये। अहमदाबाद में मार्शल्ला जारी होगया। वीरमगाम, नडियाद में जनता भड़क उठी। पटरी उखाड़ी गईं। सरकारी आदमियों के खून होगये। गांधीजी को यह नहीं रुचा। उन्होंने प्रायश्चित्त-स्वरूप तीन दिन का उपवास रखा और अभी जनमत को सत्याग्रह के अनुपयुक्त समझकर साथियों के भारी विरोध के बावजूद सत्याग्रह स्थगित कर दिया और लोगों को सही सत्याग्रह की शिक्षा देने के लिए "नवजीवन" और "यंग इंडिया" नामक पत्र निकालने आरम्भ किये।

पंजाब हत्या-काण्ड और खिलाफत

'सत्याग्रह बन्द तो होगया, पर देश में असन्तोष बढ़ता ही गया। उधर पंजाब में जंगी कानून के नाम पर जुल्म-ज्यादतियाँ शुरू हुईं। जनता को पग-पग पर अपमानित किया जाने लगा। हजारों आदमियों को कड़ी-कड़ी सजाएं मिलीं। सबकी खबर कुछ-कुछ बाहर आती गई, पर पूरी खबर किसीको न मिलती थी। आपस का मेल इतना था कि हिन्दू, मुसलमान और सिख सब बातों में पूरी तरह शरीक होते थे। साथ ही गोलियां खाते, लाठियां सहते, पानी पीते, जमीन पर रेंगते अथवा हवाई जहाज के गोलों के शिकार बनते।'[1]

जलियांवाला बाग में जो हत्याकांड हुआ उसको तो कोई मिसाल ही नहीं थी। नेहरूजी ने जब जाँच के लिए जलियांवाले बाग के बयान लिये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि वह स्थान जहाँ हत्या कांड हुआ था चारों ओर ऊंचे-ऊंचे मकानों से घिरा हुआ और बन्द था, "सिर्फ एक तरफ कोई १०० फुट के करीब कोई मकान न था, महज पांच फीट ऊंची दीवार थी। गोलियाँ तड़ातड़ चल रही थीं और लोग चट-चट मर रहे थे। जब उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझ पड़ा तो हजारों आदमी उस दीवार की ओर झपटे और उस पर चढ़ने की कोशिश करने लगे। तब गोलियां उस दीवार की ओर निशाना लगा कर चलाई गईं। ताकि कोई उस पर से चढ़कर भाग न सके। और जब यह सब खत्म हो गया तो क्या देखा गया कि मुर्दों और घायलों के ढेर दीवार के

---

[1] आत्मकथा—राजेन्द्र बाबू

दोनों ओर पड़े थे।"[1]

गांधीजी ने बार-बार पंजाब जाने की कोशिश की लेकिन सरकार ने उन्हें जाने नहीं दिया। आखिर बड़ी लिखा-पढ़ी के बाद १७ अक्तूबर को वहाँ वह पहुँचे। जाँच-कमेटी बिठाई गई, सरकार ने भी हंटर कमेटी बैठाई और जुल्मों का भंडाफोड़ हुआ, पर सरकार ने न केवल अपराधियों को दंड ही नहीं दिया, अपितु उनको तोहफे के तौर पर विशेष सम्मान भी दिया गया।

गांधीजी को अब भी सरकार की नेकनीयती में विश्वास था। इसलिए आपने अमृतसर कांग्रेस में तिलक, देशबन्धु आदि का विरोध सहकर भी माण्टफोर्ट सुधारों को स्वीकार कर लेने की अपील की। लेकिन सरकार की दुरंगी नीति, दमन से प्रपीड़ित जनता की पुकार और मुसलमानों के खिलाफत-आन्दोलन से १९२० में गांधीजी सरकार के लिए पक्के असहयोगी बन गये और उन्होंने समस्त देश में अपने असहयोग का शंख फूंक दिया।

कांग्रेस के साथ समस्त देश इस समय गांधीमय होगया था। नेहरूजी ने लिखा है 'अमृतसर-कांग्रेस में लोकमान्य तिलक भी आये थे और उन्होंने उसकी कार्रवाई में प्रमुख भाग लिया था। मगर इसमें कुछ शक नहीं कि प्रतिनिधियों में अधिकांश और उससे भी ज्यादा बाहर की भीड़ में अधिकतर लोग अगुआ बनने के लिए गांधीजी की ओर देख रहे थे। हिन्दुस्तान के राज-

[1] मेरी कहानी—नेहरू

नीतिक क्षितिज में महात्मा गाँधी की जय की आवाज बुलन्द हो रही थी।"[1]

पहली अगस्त को असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में सारे भारतवर्ष में हड़ताल मनाना तय हुआ। इसी दिन दुर्भाग्य से लोकमान्य तिलक चल बसे। भारतीयों ने राष्ट्र की राजनीति के सिंहासन पर उसी दिन से आपका अभिषेक कर दिया। कलकत्ता और नागपुर-कांग्रेस में आपका अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम देश ने स्वीकार कर लिया गया। अब आपके नेतृत्व में असहयोग का बिगुल बजा।

असहयोग-आन्दोलन

गांधीजी द्वारा असहयोग-आन्दोलन का झंडा उठाते ही सारे देश में तूफान आगया। रईसों ने सरकारी खिताब छोड़ दिये, वकीलों ने वकालत छोड़ दी, हाकिम अदालतों से उठ आये, कौंसिलों की सीटें खाली हो गईं, विद्यार्थियों ने स्कूल-कालेज छोड़ दिये और जनता समस्त विदेशी माल के बायकाट पर उतारू होगई। जगह-जगह विदेशी वस्तुओं की होली जलने लगी। गांधीजी का इशारा आदेश बन गया। बात-की-बातमें तिलक-स्वराज्य-फंड में १ करोड़ रुपया जमा होगया। कांग्रेस के १ करोड़ सदस्य हो गये और जब गांधीजी के आदेश से २० लाख चरखे चलने लगे तो अंग्रेज सरकार को भारत की शक्ति और अपनी असमर्थता का पता लगा। ज्यों-ज्यों दमन किया जाता, आन्दोलन बढ़ता। सरकार का रौब जाता रहा। दिसम्बर २१ में लार्ड रीडिंग ने यहाँ

[1] मेरी कहानी—नेहरू

तक कह दिया कि हम 'हैरान और परेशान हो रहे हैं।'

सैकड़ों वर्ष से पराधीन और असमर्थ भारतीयों में गांधीजी ने किस प्रकार जान फूँक दी थी यह नेहरूजी के शब्दों में इस प्रकार है—"हमारे अन्दर आजादी का और आजादी के गर्व का भाव आगया था। यह पुराना भाव कि हम दबे हुए हैं और हमें कामयाबी नहीं मिल सकती, बिलकुल चला गया था। अब न तो डर से बिलकुल काना-फूसी होती थी और न गोलमोल कानूनी भाषा इस्तैमाल की जाती थी, कि जिससे अधिकारियों के साथ झगड़ा मोल लेने से अपने को बचाया जा सके। हम वही करते थे जो हम मानते थे और महसूस करते थे, और उसे खुल्लम-खुल्ला डंके की चोट कहते थे। हमें उसके नतीजे की क्या परवाह थी? जेल? उसकी तो हम राह ही देख रहे थे। उससे तो हमारी उद्देश्य-सिद्धि में मदद ही पहुँचने वाली थी।"[1]

चौरीचौरा-काण्ड

१९२१ में इग्लैंड के युवराज भारत आये। उनका बहिष्कार किया गया। बम्बई में इस सम्बन्ध में कुछ उपद्रव होगये। गांधीजी ने प्रायश्चित्त-स्वरूप ७ दिन का उपवास किया। मालवीयजी ने सन्धि का उद्योग किया, पर बात नहीं बनी। आपने बारडोली में सत्याग्रह की सूचना सरकार को दी, पर इसी बीच में चौरी-चौरा में उत्तेजित जनता ने थाने पर आक्रमण करके २० आदमी मार डाले। इस दुर्घटना को ईश्वरीय चेतावनी समझ आपने

[1] मेरी कहानी—नेहरू

सत्याग्रह स्थगित कर दिया। बहुत से साथी इससे बड़े नाराज हुए, पर आप अटल रहे।

इधर सरकार ने आन्दोलन का वेग कम होते ही आपको गिरफ्तार कर लिया और कूटनीति से काम लेने लगी। उसने हिन्दू और मुसलमानों में विष के बीज बोने शुरू किये। जगह-जगह दंगे-फसाद होने लगे। अगस्त १९२४ में दिल्ली में भयानक उपद्रव हुआ। आप दौड़े हुए दिल्ली आये और राष्ट्र के प्रायश्चित्त के फलस्वरूप २१ दिन का उपवास किया। सारे देश में चिन्ता के बादल छागये और मोतीलालजी नेहरू की अध्यक्षता में एकता-सम्मेलन का आयोजन किया गया।

राष्ट्रपति और रचनात्मक कार्यक्रम

सन् १९२४ में आप कांग्रेस के बेलगाँव-अधिवेशन में राष्ट्रपति चुने गये। आपने देश का ध्यान रचनात्मक-कार्यक्रम की ओर खींचा। सन् २४ से २८ तक आप खादी के प्रचार, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम एक्य जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगे रहे। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार को बड़े व्यापक रूप से चलाया गया। एक बार फिर सारे देश का दौरा किया। साइमन कमीशन का विरोध हुआ। १९२९ में जब नेहरूजी की अध्यक्षता में पूर्ण स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र पढ़ा गया तब आपने सरकार के सामने ये मांगें उपस्थित कीं--मादक द्रव्यों का निषेध किया जाय, विनिमय की दर घटाई जाय, जमीन के लगान और फौजी खर्च में ५० प्रतिशत कमी की जाय और नमक-कर उठा दिया जाय।

नमक-सत्याग्रह

सरकार इन मांगों को कहाँ मानने वाली थी? इधर भार-

तीयों में आजादी की भावना प्रबल हो उठी थी। परिणाम-स्वरूप १९३० में जब अहमदाबाद कांग्रेस हुई तो संघर्ष का निश्चय किया गया और आप उसके सर्वाधिकारी बनाये गये। गांधीजी ने वाइसराय को सूचना दी कि अगर १० मार्च तक कोई संतोष-जनक हल नहीं निकला तो नमक-कानून के विरुद्ध सत्याग्रह छेड़ दिया जायगा। वाइसराय का जो उत्तर आया उस पर गांधीजी की प्रतिक्रिया बड़ी विरोधी हुई। उन्होंने कहा, "मैंने घुटने टेककर रोटी माँगी थी, पर मुझको पत्थर का टुकड़ा दिया गया है। अंग्रेज जाति केवल बल के आगे ही झुकना जानती है।"

डांडी-यात्रा

गांधीजी ने घोषणा की कि वह ६ अप्रेल को डांडी में जाकर नमक-क़ानून तोड़ेंगे। उन्होंने १२ मार्च, १९३० को साबरमती आश्रम के ८० स्वयंसेवकों को अपने साथ लिया और ऐतिहासिक डांडी-कूंच पर चल दिये। आश्रम छोड़ते हुए गांधीजी ने भीष्म-प्रतिज्ञा की, "जङ्गल-जङ्गल भटकूंगा, दर-दर की खाक छानूंगा, कौए-कुत्ते की मौत मरूंगा, लेकिन मुकम्मिल आजादी के बिना, सम्पूर्ण स्वराज्य के बिना, वापस आश्रम में पैर न धरूँगा।"

प्रति दिन १०-१२ मील यह दल चलता। यात्रा का विवरण प्रति दिन समाचार-पत्रों में छपता और देश पर जादू-सा छाता जाता। सारा देश ६ अप्रेल की बाट देख रहा था। गांधीजी जैसे-जैसे बढ़ते गये, देश में उत्साह और आन्दोलन भी

बढ़ता गया। सरदार पटेल गिरफ्तार कर लिये गये। इसके बाद में अ० भा० कांग्रेस कमेटी हुई। वहां से मोतीलाल जी, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्रबाबू आदि भी यात्रा में शामिल हुए और जम्बूसर तक आकर अपने-अपने प्रान्तों में लौट गये और सत्याग्रह की तैयारी करने लगे। सारे प्रान्तों में हुक्म फिर गया कि जब तक गांधीजी का आदेश न मिले, कोई कुछ न करे।

गांधीजी ने ६ अप्रेल को डांडी में समुद्र के किनारे नमक-क़ानून तोड़ा और उसके बाद यह हवा सारे देश में फैल गई। नेहरूजी ने इस समय का दृश्य चित्रित करते हुए लिखा है:—

"ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई बटन दबा दिया गया, और अचानक सारे देश में, शहरों और गाँवों में, जिधर देखो रोज़ नमक बनाने की धूम फैल गई। नमक बनाने के लिए कई अजीब-अजीब तरकीबें निकाली गईं। बर्तन और कढ़ाइयां इकट्ठी कीं और अन्त में एक भद्दी-सी चीज (नमक) बना ही डाली, जिसे हम बड़ी बहादुरी से उठाकर दिखाते और अक्सर बहुत ऊँची क़ीमतों पर नीलाम भी करते। वह अच्छी चीज है या बुरी, सचमुच इसका कोई महत्त्व ही नहीं था, क्योंकि ख़ास चीज तो उस बेहूदे नमक-क़ानून को तोड़ना था। जब हमने देखा कि लोगों में उत्साह उमड़ रहा है और नमक बनाना जंगली आग की तरह चारों ओर फैल रहा है, तो हमें कुछ शर्म मालूम हुई, क्योंकि जब गांधीजी ने इस तरीके की तजवीज पहले-पहल रखी थी, तब हमने उसकी क़ामयाबी में शक किया था।

हमें ताज्जुब होता था कि इस व्यक्ति में लोगों पर असर डालने और उनसे संगठित रूप में काम करवाने की कितनी अद्भुत सूझ है।❀

अन्त में गांधीजी ने धरसाणा पर धावा बोल कर वहां के सरकारी नमक को लूटने का निश्चय किया। लेकिन उससे एक दिन पहले ही रात में पुलिस आई और गांधीजी को चुरा ले गई।

गांधी-इर्विन समझौता

५ मई को गांधीजी यरवदा जेल में नज़रबंद कर दिये गये। दमन बढ़ा तो आन्दोलन की आग में जैसे घी की आहुति पड़ गई। आर्डिनेंस-पर-आर्डिनेंस निकाले गये। गढ़वाली सिपाहियों ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया। बहादुर पठानों ने मशीन-गनों के मुक़ाबिले अपनी अहिंसक छाती खोल दी। नमक के कारख़ानों और गोदामों पर धावे किये गये। स्त्रियां चूल्हा-चौका छोड़ स्वतन्त्रता के मैदान में आगईं। एक डिक्टेटर गिरफ्तार होता, दूसरा मैदान में आजाता। टोली-पर-टोली स्वयंसेवक महात्मा गांधी की जय बोलते हुए जेल जाते, लाठी सहते, घोड़ों के तले आजाते और वक्त पड़ने पर अपने प्राण भी निछावर कर देते। कोई एक लाख स्त्री-पुरुष इस आन्दोलन में जेल गये। आखिर सरकार ने घुटने टेक दिये। २६ जनवरी सन् ३१ को कार्य-समिति के सदस्य छोड़े गये। ५ मार्च को लार्ड इर्विन से

❀ मेरी कहानी।

समझौता हुआ और सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। सरकार को गांधीजी की बहुत-सी बातें माननी पड़ीं।

गोलमेज-परिषद् और '३२ का आन्दोलन

अब सरकार ने गोलमेज-परिषद् का स्वांग भरा। उसके लिए कांग्रेस ने आपको अपना एक-मात्र प्रतिनिधि चुना। आप विलायत गये। वहा होना ही क्या था? वही साम्प्रदायिकता और अछूत-समस्या के राग अलापे गये और गांधीजी को खाली हाथ लौटना पड़ा। इधर भारत में सरकार ने अपना समझौता तोड़ दिया। सीमाप्रान्त और युक्तप्रान्त में दमन-चक्र चल पड़ा। नेहरूजी पकड़ लिये गये। गांधीजी ने वाइसराय से फिर लिखा-पढ़ी शुरू की, पर वाइसराय कड़े पड़ गये और गांधीजी से मिलने तक से इन्कार कर दिया।

सरकार ने इस बार कांग्रेस को कुचल डालने की पूरी तैयारी करली। गांधीजी ने इस बार चहुंमुखी सत्याग्रह प्रारम्भ किया। सरकार ने आर्डिनेंस-पर-आर्डिनेंस निकाले। इस बार गिरफ्तारियां कम की गईं। जगह-जगह भयानक लाठी-चार्ज और आतङ्क से जनता के साहस को कम करने का प्रयत्न किया गया, पर जनता का न साहस टूटा न उसके सत्याग्रह के प्रयत्नों में कमी आई। कांग्रेस ग़ैरक़ानूनी करार दे दी गई फिर भी दिल्ली और कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन किये गये।

हरिजनों के लिए उपवास

इधर गांधीजी ने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण क़दम उठाया। सर-

कार हरिजनों का प्रश्न उठाकर हिन्दुओं में फूट डालने की जी-जान से कोशिश कर रही थी। उसने साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा हिन्दुओं से दलित-जातियों को अलग करके उन्हें विशेषाधिकार दे दिये। गांधीजी ने इस निर्णय के विरुद्ध अपने प्राणों की बाजी लगा दी और २१ सितम्बर को आमरण अनशन शुरू कर दिया। सारे देश में खलबली मच गई। सरकार परेशान हो उठी और पूना-पैक्ट हुआ जिसे सरकार ने स्वीकार किया। २६ सितम्बर को यह उपवास खुल गया।

८ मई १९३३ को आपने फिर एक २१ दिन का उपवास किया। १ अगस्त को ३२ आश्रमवासियों के साथ आपने फिर सत्याग्रह की घोषणा की। परिणामस्वरूप ३१ जुलाई को आप गिरफ्तार कर लिये गये। १६ अगस्त को आपने फिर उपवास किया और २३ अगस्त को आप छोड़ दिये गये। उसके बाद आप हरिजनोद्धार पर निकले। सारे भारत में आपका अपूर्व स्वागत हुआ और ८ लाख रुपया जनता ने आपको हरिजन-सेवा के लिए भेंट किया। कांग्रेस ने जब सत्याग्रह से कौंसिल प्रवेश की ओर मुंह मोड़ा तो उसे आपका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। १९३४ को बंबई-कांग्रेस से पहले आपने कांग्रेस का नया विधान बनाया और ग्राम-उद्योग-संघ का निर्माण किया। बंबई अधिवेशन से आप कांग्रेस से अलग हो गये।

तब से मृत्यु-पर्यंत गांधीजी यों कांग्रेस से अलग रहे, पर कांग्रेस कभी उनसे अलग नहीं हुई। कांग्रेस के सारे महत्त्वपूर्ण निर्णय ही नहीं, उसकी महत्त्वपूर्ण बैठकें भी सदैव आपकी इ

देखरेख और सुविधा के अनुसार होती रही।

कांग्रेस से अलग होने के बाद आप विविध सार्वजनिक कार्यों में लगे। 'हरिजन' के प्रकाशन द्वारा विविध समस्याओं पर प्रकाश डाला जाने लगा। अंडमान के और दूसरे राजबन्दियों की रिहाई के लिए आपने घोर प्रयत्न किया। लंगोटी तो पहले ही लगा चुके थे अब एकदम देहातों के साथ तन्मय होने के लिये आप सेगांव जा बसे। १९३८ में आपका सीमाप्रांत का दौरा विशेष महत्व रखता है।

साम्प्रदायिक समस्या

अब गांधीजी का समस्त ध्यान दो ही विषयों की ओर केन्द्रित था—एक हरिजनोद्धार और दूसरे हिन्दू-मुसलमान समस्या। मुस्लिम लीग जो खिलाफत के युग में गांधी जी के कंधे-से-कंधा मिला कर चली थी; अब अंग्रेजों के इशारे से जिन्ना साहब की अध्यक्षता में राष्ट्रविरोधी बन गई थी। गांधीजी ने इसके लिए कई बार सक्रिय कदम उठाया। १९३८ के अप्रेल व मई में आपने श्रीजिन्ना के साथ पत्र-व्यवहार किया। २८, २९ अप्रेल और ३० मई को आपकी जिन्ना के साथ ऐतिहासिक मुलाकातें भी हुईं। आपने घुटने टेक कर जिन्ना से भीख मांगी, पर वह टस-से-मस न हुए।

इस बीच के सन्धिकाल में कांग्रेस तो कौंसिलों और मंत्रि-मंडलों में घुस कर यथासाध्य राष्ट्र-निर्माण का कार्य करती रही और गांधीजी रचनात्मक कार्यों में लगे रहे। त्रिपुरी कांग्रेस में

इस बीच श्री सुभाषचन्द्र बोस के साथ कार्यकारिणी का मतभेद हुआ और आपने राजकोट में ठाकुर के प्रजा के दिये वचनों से मुकरने पर अनशन किया।

दूसरा महायुद्ध

दूसरे महायुद्ध के शुरू में गांधीजी वाइसराय से मिले और एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें इंग्लैंड के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई और यह भी कहा गया कि हमें बिना शर्त इंग्लैंड की मदद करनी चाहिये। बहुत से कांग्रेसियों को गांधीजी की बिना शर्त मदद करने की बात पसन्द नहीं आई। लेकिन गांधीजी का मदद से मतलब नैतिक सहानुभूति था, जिसकी वह बहुत बड़ी कीमत समझते थे, जब कि सरकार को नैतिक नहीं रुपये और आदमियों की आवश्यकता थी।

इस पर कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक हुई, जिसमें फासिस्टों और नात्सियों की निन्दा की गई और इंग्लैंड से साफ-साफ युद्ध का उद्देश्य पूछा गया। लेकिन सरकार को इन बातों से क्या, उसने तो बिना देश की सलाह के हिन्दुस्तान को भी लड़ाकों में दाखिल कर दिया था। उस समय ११ में से ८ प्रांतों में कांग्रेसी मन्त्रिमंडल थे, हिन्दुस्तान की धारा-सभा कायम थी, पर बिना किसी से परामर्श किये ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान की ओर से युद्ध-घोषणा करदी। कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से दो मांगें रखीं कि एक तो सरकार उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करे दूसरे भारत की आजादी के बारे में निश्चित वचन ही नहीं दिया जाय युद्धकाल में भारत को ऐसे शासन-सम्बन्धी अधिकार दिये

जांय जिससे अपनी इच्छानुसार वह शासन-प्रबन्ध कर सके और सरकार को सच्ची युद्ध सहायता दे सके।

कांग्रेस की प्रतिक्रिया

लड़ाई के प्रारम्भ में मित्र राष्ट्रों ने प्रजातंत्र की लंबी-चौड़ी दुहाई दी तो कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से पूछा कि क्या यह प्रजातंत्री सिद्धांत यूरोप के लिये ही हैं या भारत, दक्षिण अफ्रीका और एशिया की दूसरी गुलाम जातियों के लिये भी हैं? लेकिन इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर हिन्दुस्तान को नहीं दिया गया। चर्चिल-सरकार के सामने उस समय एक ही उद्देश्य था कि ब्रिटिश साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखना। लार्ड लिनलिथगो लकड़ी से थन छूते रहे। तरह-तरह की बातें उनकी ओर से उठती रहीं पर कोई भी दल उनसे संतुष्ट नहीं हुआ। हाँ, वह एक बात में अवश्य कामयाब होगये कि उन्होंने मुस्लिम लीग का खूब बढ़ावा दिया और ऐसी स्थिति पैदा करदी कि दुनिया यह कहे कि अंग्रेज तो भारत को आजादी देना चाहते हैं मगर हिन्दुस्तान के लोग नालायक हैं, आपस में झगड़ते हैं और अभी वे स्वतंत्रता के योग्य भी नहीं हैं।

इधर कांग्रेस अपनी मांग पर अड़ गई और उसने १६३६ के नवम्बर में मंत्रिमंडल में गये लोगों से वापस आजाने को कहा। परिणामस्वरूप मन्त्रिमंडल टूट गये, सारे देश में धारा ६३ का राज्य हो गया और गवर्नरी शासन चलने लगा। युद्ध में उधर जर्मनी जोर पर था। पोलैंड, बेल्जियम, हालैंड, डेन-

मार्क, नार्वे फ्रांस पराजित होगये। चेम्बरलेन की सरकार टूट गई। चर्चिल की सर्वदलीय सरकार बनी। वर्किंग कमेटी इन परिस्थितियों पर गम्भीरता से विचार करती रही। अहिंसा और हिंसा को अपनाने के लिए बड़ी-बड़ी चर्चाएं हुई। आखिर कांग्रेस की ओर से सरकार को बाजाप्ता सहायता देने का प्रस्ताव पास हुआ। लेकिन सरकार ने उसे नामंजूर कर दिया और वायसराय ने कहा कि युद्ध-काल में शासन में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता, हाँ वाइसराय की कार्यकारिणी में हिन्दुस्तानियों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। अब हर हाल से यह साफ हो गया था कि सरकार भारतीयों के हाथों में कोई अधिकार नहीं सौंपना चाहती।

वैयक्तिक सत्याग्रह

बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने सरकार के इस रुख पर विचार किया और गांधीजी की अध्यक्षता में वैयक्तिक सत्याग्रह का निर्णय किया गया। गांधीजी का यह प्रयोग अपने ढंग का अकेला था। उन्होंने निश्चय किया कि, "यद्यपि यह सत्याग्रह वैयक्तिक होगा, सामूहिक नहीं, तथापि कोई व्यक्ति उनसे मंजूरी पाये बिना सत्याग्रह नहीं कर सकेगा और वह अनुमति ऐसे ही लोगों को देंगे जिन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम के किसी अंग को अपनाया हो तथा उसमें काम किया हो। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि ऐसे लोगों को अनुमति दी जायगी जो प्रतिनिधित्व कर रहे हों—अर्थात् जिनकी हैसियत

ऐसी हो कि वह केवल व्यक्ति न हो; अनेक के प्रतिनिधि हों।"* प्रान्तीय कांग्रेस से ऐसे लोगों के नाम मंजूर होते; गांधीजी उन्हें स्वीकृति देते और तब जाकर वे लोग सत्याग्रह करते।

प्रत्येक सत्याग्रही यह घोषित करता कि हम युद्ध में किसी प्रकार की मदद नहीं कर सकते। उसका नारा होता 'न एक भाई न एक पाई'। प्रदर्शन वगैरह के लिये कड़ी ताकीद करदी गई। गांधीजी सरकार को बिना शोरगुल के यह दिखला देना चाहते थे कि देश युद्ध-प्रयत्नों में तुम्हारे साथ नहीं है। कौंसिल में, एसेम्बलियों में; जिला बोर्डों में; कांग्रेसियों के चुने हुये सदस्य वैयक्तिक सत्याग्रह करके यह दिखला रहे थे कि हम तो निमित्त-मात्र हैं, जिन्होंने हमें चुना है उन असंख्य नर-नारियों का समर्थन हमारे साथ है। पहले विनोबा भावे ने सत्याग्रह किया और फिर सत्याग्रहियों का तांता लग गया। देश ने अपने ऊपर लादे गए जबरन युद्ध-प्रयत्नों का संसार के सामने भंडा-फोड़ कर दिया।

क्रिप्स-योजना

उधर युद्ध की स्थिति विषम-से-विषमतर होती गई। उसकी लपटें पश्चिम से मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व तक फैल गईं जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया। इसके साथी जापान ने चीन का बहुत-सा भाग हड़प लिया और प्रशान्त महासागर के बहुत-से द्वीपसमूहों पर कब्जा करता हुआ वह सिंगापुर, स्याम और

*आत्मकथा—राजेन्द्रप्रसाद

बर्मा तक बढ़ आया। अब इङ्गलैंड के दिमाग़ में हिन्दुस्तान से कुछ तय करने की बात पैदा हुई। इंगलैंड में एक योजना तैयार की गई और उसे लेकर सर स्टेफोर्ड क्रिप्स मार्च ४२ में हिंदुस्तान आये।

क्रिप्स के आगमन पर गांधीजी दिल्ली आये। योजना मालूम हुई और उस पर विचार चर्चाएं चलीं। योजना में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना तय किया गया था और प्रांतों को यह अधिकार दिया गया था कि वे चाहें तो भारतीय यूनियन में रहें और न चाहें तो अलग रहें। सारांश में मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग मानली गई थी और तत्काल वायसराय की कौंसिल में परिवर्तन तो स्वीकार किये गये थे, पर उसको युद्ध और सेना-सम्बन्धी तो कोई अधिकार थे ही नहीं—बाकी अधिकार भी नाम-मात्र के थे। गांधीजी को यह योजना पसन्द नहीं आई। उन्होंने अपना स्पष्ट मत क्रिप्स को बतला दिया और वह सेगांव लौट गये।

क्रिप्स-योजना पर अपनी प्रतिक्रिया बताते हुए अमरीकन पत्रकार लुईफिशर से उन्होंने कहा था, "जब मैंने क्रिप्स-योजना का मज़मून देखा तो मुझे विश्वास हो गया कि इन शर्तों पर सहयोग की कोई आशा नहीं। सबसे बड़ा सवाल देश-रक्षा का था। लड़ाई के दिनों में स्वदेश-रक्षा गवर्नमेंट का पहला काम है।❀ और अंग्रेज लोग देश की फौजों को भारतीयों के हाथ में सौंपना नहीं चाहते थे, जबकि गांधीजी का विचार था कि रक्षा-

❀गांधीजी के साथ सात दिन

विभाग भारतीयों के हाथ में ही हो। परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी ने काफी सोच-विचार और मुलाकातों के बाद क्रिप्स-योजना अस्वीकार करदी और क्रिप्स वापस लौट गये।

अगस्त-क्रान्ति

गांधीजी जब से हिन्दुस्तान की राजनीति में आये उन्होंने यथाशक्ति अंग्रेजों के साथ असहयोग करते हुए भी सहानुभूति का व्यवहार किया और सदैव समझौते के लिए तैयार रहे, पर क्रिप्स-योजना के बाद उनका धैर्य टूट गया। जिस अंग्रेज जाति पर उन्हें बड़ी श्रद्धा थी, उसकी नेकनीयती पर से अब उनका विश्वास जाता रहा और दिन-प्रति-दिन उनके विचार उग्र होते गये। उन्होंने धारा-प्रवाह रूप से अविलम्ब स्वतन्त्रता के प्रतिपादन में लेख लिखने प्रारम्भ किये। उन्होंने कहा कि अब समय आगया है कि 'हमको अपनी स्वतन्त्रता लेने के लिये खुद तैयार होजाना चाहिए—चाहे अंग्रेज इसे बुरा क्यों न मानें'। देश आश्चर्यजनक रूप से गांधीजी की विचार-धारा में रंगता गया।

गांधीजी ने इलाहाबाद में होने वाली वर्किङ्ग कमेटी के लिए एक जोरदार प्रस्ताव भेजा। चारों ओर आंदोलन की चर्चा उठने लगी। फिर से सबकी नजरें गांधीजी की ओर मुड़ गईं और उनसे आंदोलन की रूपरेखा पूछी जाने लगी। उन्होंने कहा, 'पहले कांग्रेस को आंदोलन करने का फैसला करना है। जब आंदोलन का फैसला होगा तब कार्यक्रम की बात उठेगी।

हाँ, इतना अवश्य है कि इस बार का आंदोलन बहुत उग्र होगा. केवल जेल जाना ही काफी नहीं होगा, उससे कहीं अधिक त्याग की जरूरत पड़ेगी; आवश्यकता होने पर धन-धान्य, घर-द्वार सब कुछ स्वाहा करना होगा।'

बम्बई में ८ अगस्त ४२ से वर्किंग कमेटी की बैठक शुरू हुई। देश दम साधकर गांधीजी के निर्णय और उस पर सरकार की प्रतिक्रिया की बाट जोह रहा था। गांधीजी आंदोलन के लिए कटिबद्ध थे। दूसरी तरफ सरकार उसका पेशगी मुकाबला करने के लिए तैयार थी। वर्किंग कमेटी ने ऐतिहासिक 'भारत छोड़ो' अगस्त प्रस्ताव पास किया। वह अखबारों में छपा। आठ अगस्त को अखिल भारतीय कमेटी ने भी उसे पास कर दिया।

"करेंगे या मरेंगे"

'भारत छोड़ो' प्रस्ताव की भूमिका गांधीजी की बनाई हुई थी। पिछले मई महीने में ही उन्होंने साफ कह दिया था कि, "अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से चला जाना पड़ेगा और अपनी फौजों को भी ले जाना पड़ेगा, नहीं तो मैं अपना आंदोलन शुरू कर दूंगा।" अंग्रेजों के चले जाने से जो अराजकता पैदा होगी और जो साम्प्रदायिक मारकाट फैलेगी उस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था, 'मैं चाहता हूँ अंग्रेज यहाँ से शान्ति के साथ जायें और हिन्दुस्तान को परमात्मा के हवाले करदें। अराजकता फैलेगी तो उसे हम रोकेंगे और शायद यहाँ निसजका दौरदौरा न हो।"

लेकिन इन सब से बढ़कर ८ अगस्त की रात्रि को महासमिति में जो उन्होंने भाषण दिया था उसने लोगों में जान फूंक दी और वे करने या मरने को तय्यार होगये ! गांधीजी ने घोषणा की:—

"अब बीच में समझौता नहीं है । मैं नमक की सुविधाएँ या शराबबन्दी लेने नहीं जा रहा हूँ । मैं तो एक ही चीज लेने जा रहा हूँ—आजादी । नहीं देना है तो कत्ल करें । मैं वह गांधी नहीं जो बीच में कुछ चीज लेकर आजाय । आपको तो मैं एक मंत्र देता हूँ—करेंगे या मरेंगे । जेल को भूल जायं । आप सुबह-शाम यहा कहें कि खाता हूँ, पीता हूँ, साँस लेता हूँ तो गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिए । जो मरना जानते हैं, उन्होंने ही जीने की कला जानी है । आज से तय करें कि आजादी लेनी है । नहीं लेनी है तो मरेंगे । आजादी डरपोकों के लिये नहीं । जिनमें करने की ताकत है वही जिन्दा रह सकते हैं । हम चींटियां नहीं हम हाथी से भी बड़े हैं, हम शेर हैं ।"❀

विदेशी पत्रकारों को संबोधित करते हुए गांधीजी ने अंग्रेजी में कहा था—"मैं कहाँ जाऊँ ? आजादी के स्पर्श बिना करोड़ों की जनता को दुनिया की मुक्ति के यज्ञ में दिल से भाग लेने की और क्या रीति हो सकती है ? आज तो जनता के प्राण चूस लिये गये हैं—पीस दिये गये हैं, उनकी निस्तेज आँखों में तेज लाना हो तो आजादी कल नहीं, आज ही आनी चाहिए । इसी से मैंने आज कांग्रेस से यह बाजी लगवाई है, या तो कांग्रेस

❀ सन् बयालीस का विद्रोह ।

देश को आजाद करेगी या खुद फना हो जायगी—करेंगे या मरेंगे।"+

प्राण फूँकने वाले गांधीजी के इस भाषण ने देश को झकझोर डाला। पीड़ित राष्ट्र की तरुणाई बल खाकर उठ पड़ी। संघर्ष की भूमिका गांधीजी के लेखों और भाषणों से बन ही चुकी थी। वह यह भी कह चुके थे कि जब कोई नेता न रहे तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना नेता है। इसलिए, जब नौ अगस्त को सामूहिक गिरफ्तारियाँ हुई और वर्किङ्ग कमेटी के अन्य नेताओं के साथ गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये तथा सारे देश में से छाँट-छाँट कर कांग्रेसी नेता जेल में ठूँस दिये गये तो जनता ने स्वयं अपना नेतृत्व सम्हाल लिया। विश्व की बड़ी-बड़ी क्रान्तियों में अगस्त क्रान्ति को अभूतपूर्व स्थान प्राप्त है। जनता ने बिना नेता, बिना कार्य-क्रम और बिना जात-पात को परवाह किये ब्रिटिश गोरीशाह के भीषण दमन का बड़े साहस के साथ मुकाबला किया। सन '४२ के आन्दोलन के खुले विद्रोह का विस्तृत इतिहास तो अलग एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का विषय है, पर इस तूफ़ान और उसके परिणाम के जो आँकड़े उस समय की सरकार ने प्रकाशित किये हैं उससे संक्षेप में आन्दोलन की व्यापकता और दमन की भीषणता का सहज अनुमान किया जा सकता है। आँकड़े इस तरह हैं:—

गोलियों से मरे हुओं की संख्या ९,४०

+ सन् बयालीस का विद्रोह

गोलियों से घायलों की संख्या	१,६३०
कितनी बार गोलियाँ चलाई गईं	५,३८
गिरफ्तार हुए व्यक्तियों की संख्या	६०,२२६
नजरबन्दों का संख्या	१८,०००
जहाँ फौजें बुलाई गईं उन स्थानों की संख्या	६०
जहाँ बम गिराये गये उन स्थानों की संख्या	६
बरबाद स्टेशनों की संख्या	३,१८
गिराई गई गाड़ियों की संख्या	५६
तोड़-फोड़-द्वारा रेलों की जो क्षति हुई	१८,००,०००
मोटर लारियों की क्षति	६,००,०००
स्टेशन की इमारतों की क्षति	८,५०,०००
स्टेशन की अन्य सामग्री की क्षति	६,५०,०००
नष्ट पोस्ट आफिसों की संख्या	६,५४
नक़द तथा दूसरी तरह से की गई क्षति	६,५०,०००
टेलीफोन व टेलीग्राफ जहाँ काटे गये उनकी संख्या	१२,०००
फर्नीचर आदि की क्षति	१,००,०००

इस आन्दोलन की यह विशेषता थी कि जब तक यह आन्दोलन चला हिन्दू मुसलमानों में कहने को भी एक उत्पात नहीं हुआ, इस आन्दोलन की आग देशी रियासतों में भी फैल गई और देश के तरुण विद्यार्थी-समाज ने नेताओं की अनुपस्थिति में आन्दोलन की बागडोर सम्हाल ली।

अंग्रेजों ने कांग्रेस और गांधीजी को बदनाम करने का प्रचार आरम्भ किया। कांग्रेस-नेताओं पर हिंसा का आरोप

लगाया गया और इसकी जिम्मेदारी गांधीजी और कांग्रेस पर डाली गई। गांधीजी ने इस मिथ्या आरोप पर वाइसराय से पत्र-व्यवहार किया और उन्होंने चुनौती दी कि सरकार अपने कथन की सत्यता के लिए हम लोगों पर खुला मुकदमा चलाये। उन्होंने कहा कि जो भी हिंसाएं हुईं उसके लिये सरकार जिम्मेदार है, जिसने जनता को उसके नेताओं से अलग कर दिया। यह सच था। वास्तव में कार्यक्रम यह था कि आठ अगस्त के बाद गांधीजी वाइसराय से मिलते और तब आन्दोलन की रूप-रेखा निश्चित होती। गांधीजी का चलाया हुआ आन्दोलन कभी हिंसक भी हो सकता था, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती?

सन् '४२ में गांधीजी को आगाँखा महल में रखा गया। यहाँ नियति ने उन पर दो बहुत बड़े आघात किये। उनके दो जीवन-साथी यहाँ आकर उनसे बिछुड़ गये। राष्ट्रमाता कस्तूरबा यहीं शहीद हुईं और गांधीजी में अपने आपको तन्मय कर देने वाले उनके प्राणप्रिय सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई भी यहाँ आकर शहीद होगये। कुसुम-कोमल प्रवृत्ति वाले गांधीजी ने वज्रादपि कठोरता से इन आघातों को हँस कर सहा।

आगाँखाँ महल की तीसरी ऐतिहासिक घटना गांधीजी का सबसे कठोर वह अनशन था जिसमें वह मौत को भी शिकस्त देकर बच निकले थे। इस अनशन का बड़ा दूरगामी प्रभाव हुआ। इसने एक ओर जहाँ गांधीजी और कांग्रेस के साधनों की निर्मलता को उजागर किया वहाँ दूसरी ओर देश की श्मशान-

शांति को भी भंग कर दिया। सारे संसार का ध्यान एक बार फिर भारत के बेताज के बादशाह उस अर्द्ध-नग्न फकीर की ओर केन्द्रित होगया, जो यह प्रण लेकर साबरमती आश्रम से चला था कि जब तक आजादी न लेलूंगा वापस यहाँ न लौटूँगा और जिसने भारत की जनता की नस-नस में यह मंत्र फूंक दिया था कि 'करेंगे या मरेंगे'।

शिमला-कान्फ्रेंस

अंग्रेज अब अच्छी तरह समझ गये कि वे अब लाख प्रयत्न करें गांधीजी ने उनका भारत में रह सकना असम्भव कर दिया है। जो भारत कभी उनके गले का हार था वह अब गर्दन में लिपटे हुए साँप की तरह क्षण-प्रति-क्षण अपनी गुञ्जलक मजबूत करता चला जाता था। भारत को गुलाम बनाये रखने के कारण दिन-पर-दिन अंग्रेजों की अंतर्राष्ट्रीय साख गिर रही थी, इधर भारत में जबर्दस्त गतिरोध पैदा होगया था। जनता तो अंग्रेजों से विमुख थी ही, अब उसकी चिरपोषित नौकरशाही में भी विद्रोह फूट आया। नेताजी के सशस्त्र फौजी विद्रोह और उसमें भारतीय फौजों के मिल जाने से अंग्रेजों के पैरों की धरती ही खिसक गई। परिणामस्वरूप जब ब्रिटेन में नये चुनाव हुए और वहाँ मजदूरों की सरकार बनी तो उसने भारत से अपना पिंड छुड़ा लेना ही श्रेयस्कर समझा।

गांधीजी छोड़े गये। लार्ड वेवल को लंदन बुलाया गया और देश के सामने नई व्यवस्था के कुछ प्रस्ताव रखे गये। देश के

समस्त नेता शिमला-वार्ता के लिए निमंत्रित किये गये, कांग्रेस-कार्यकारिणी के सदस्य छोड़ दिये गये और शिमला-वार्ता का दौर शुरू हुआ। लार्ड वेवल ने गांधीजी से अनुनय की आप हम सबका मार्ग-प्रदर्शन कीजिए। गाँधीजी वाइसराय के सलाहकार बनकर वहाँ पहुँचे। ज्ञात हुआ कि वाइसराय की कार्यकारिणी को राष्ट्रीय सरकार का रूप दिया जाना है। सभी पार्टियों से उसके लिए नाम मांगे गये। मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के नाम दिये, सिख नेताओं ने सिखों के; पर कांग्रेस तो सारे देश का प्रतिनिधित्व करती थी, उसने सारी कैबिनेट के लिए १५ नाम सुझाये। जिन्नासाहब भला यह बात कैसे मान सकते थे? गतिरोध हुआ। किसी प्रकार फिर वार्ता चली, लेकिन राष्ट्रीय मुसलमानों पर उठाई गई श्री जिन्ना की आपत्ति के कारण अन्ततः उसे भंग होजाना पड़ा।

अस्थायी केन्द्रीय सरकार

इधर केन्द्रीय और प्रान्तीय चुनाव हुए, जिनके परिणाम-स्वरूप केवल सिंध और बंगाल में, वह भी टोरी अंग्रेजों की सहायता से लीग अपना मंत्रि-मंडल बना सकी। बाकी सभी प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रि-मंडल बने। कांग्रेस ने स्वतंत्रता की मांग फिर से दुहराई। अन्त में १९४६ के मार्च में ब्रिटिश सरकार की ओर से एक घोषणा हुई और भारत-मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और ए० वी० एलैक्जैंडर का मंत्रि-मिशन भारत के मसले को सुलझाने आया। गांधीजी और

नेताओं के साथ फिर से महत्त्वपूर्ण वार्तालाप शुरू हुआ। काफी दिनों की चर्चा के अनन्तर मिशन वापस लौट गया और १६ मई को अंग्रेज सरकार ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें पाकिस्तान नहीं माना गया, विधान-परिषद् की बात कही गई और तत्काल राष्ट्रीय-सरकार कायम करने के सिद्धान्त को मान लिया गया। अस्थायी-सरकार की स्थापना के लिए वाइसराय से बातें चलीं। मुस्लिम लीग फिर अड़ी। उसने अपनी सीधी-उलटी कार्रवाई भी की, लेकिन अन्ततः उसे रास्ते पर आना पड़ा और अन्त में २ सितम्बर, १९४६ को गांधीजी के आशीर्वाद से अस्थायी-सरकार की स्थापना होगई।

नोआखाली में

केन्द्रीय सरकार की स्थापना के पहले ही लीग अपनी सीधी कार्रवाई प्रारम्भ कर चुकी थी। १६ अगस्त को कलकत्ते में भयानक नर-संहार हुआ। उसकी आग नोआखाली में फैली। फिर बिहार, पंजाब, गढ़मुक्तेश्वर, दिल्ली तक उसकी सर्वग्रासी लपटें बढ़ती गईं। भविष्य-द्रष्टा गांधीजी इस महाविनाश की रोकथाम के लिए कमर कसकर तय्यार होगये। नोआखाली के पागलपन से वह स्थिर न रह सके और उन्होंने अकेले वहाँ जाने का निश्चय किया।

इतिहास के धूमिल पृष्ठों में गांधीजी की नोआखाली-यात्रा अपने स्वर्णांकित अक्षरों में युग-युग तक चमकती रहेगी। मुस्लिम लीग द्वारा शासित प्रदेश में जहाँ गुंडागीरी का साम्राज्य था, नंगे

पैर गाँधीजी गाँव-गाँव गये और लोगों को धैर्य और साहस का संदेश दिया। वहाँ से साम्प्रदायिक उत्पात एकदम विलुप्त हो गये और जिन्हें कि कलकत्ते की सीधी-कार्रवाई का अगुआ कहा जाता था, वह हसन शहीद सुहरावर्दी गांधीजी के जन्म-जन्म के लिए अनुगत होगये।

दासता से मुक्ति

अन्ततः ऐसा भी दिन आया जब बिना हील-हुज्जत के अंग्रेजों ने यहाँ से जाना स्वीकार किया और १५ अगस्त सन् ४७ को गाँधीजी के तप, त्याग और प्रभाव से देश सैकड़ों वर्ष की गुलामी से मुक्त होगया। चिरप्रतीक्षित १५ अगस्त ! भारतीय जनता हर्ष-विमुग्ध अपनी-सुध-बुध खो उठी। घर-घर में दिवाली मनाई गई। राजधानी, शहर और गाँव-गाँव क्या, भारत का घर-घर खुशी से नाच उठा। पर गांधीजी, जो भारत की स्वतंत्रता के जनक थे, जिनके एकमात्र परिश्रम का फल आज चखने को मिला था वह—'राजिव लोचन राम चले तज बाप को राज बटाऊ की नाईं।' इन उत्सवों और खुशियों की दिल्ली से वह दूर चलेगये। नेताओं, उनके आजीवन साथियों, प्राणप्रिय अनुगामियों ने लाख कोशिशें कीं कि वह दिल्ली में रह कर उस दिन आजादी के उत्सवों को अपनी आँखें भरकर देखें और उनमें शीर्ष भाग ग्रहण करें, पर वह वीतराग नहीं रुके। उन्होंने हनुमान की भांति कहा, "रामकाज कीन्हे बिना मोहि कहां विश्राम।" जब तक देश की साम्प्रदायिक आग बिलकुल बुझ

नहीं जाती, तब तक मुझे चैन नहीं। और वह अधूरा कार्य पूरा करने के लिए कलकत्ता चल दिये। जब पंजाब जल रहा हो, बंगाल विकल हो, जब सारा देश ज्वालामुखी के किनारे खड़ा हो— वह कैसे आनन्द मना सकते थे ?

साम्प्रदायिक उत्पात

१५ अगस्त के बाद आज़ादी का मोर्चा समाप्त हुआ। अब देश को सम्हालने और उठाने की आवश्यकता थी। जब तक देश में आन्तरिक कलह रहता, अन्याय और उपद्रव सुलगते रहते, तब तक नव-निर्माण की बात सम्भव नहीं थी। इधर पंजाब और बंगाल का विभाजन होजाने के परिणामस्वरूप दोनों जातियों में परस्पर कटुता की मात्रा भयंकर रूप से बढ़ रही थी। लाखों लोगों के स्थान-परिवर्तन ने नवनिर्माण की समस्याओं को तो उलझा ही दिया था, साथ ही उससे कटुता की बाढ़ में और भी वेग आगया था। यह कहना गलत न होगा कि एक बार तो यह कालकूट सारे भारतवर्ष में बुरी तरह व्याप्त हो गया और बड़े-बड़े तटस्थ, निष्पक्ष और राष्ट्रीय आधार तक उसमें गोता खाने लगे।

गांधीजी देश के बैरोमीटर थे। देश की नब्ज उनके हाथ में थी। रोग का निदान भी उन्हें ज्ञात था। वह उसकी चिकित्सा में तत्पर होगये। उन्होंने देखा कि जहर अगर अधिक फैला तो राष्ट्र का विनाश निश्चित है। रोग इतना भयंकर रूप से फैल गया था कि अब मामूली शल्य-क्रिया उसमें असर नहीं कर

सकती थी। पहले लड़ाई परदेशियों से थी, इस बार घर में ही जूझना था। तब करोड़ों की जय-जयकार उनके साथ थी, अब अकेले ही समरांगण में उतरना था। देश के विषम दावानल को शान्त करने के लिए गांधीजी अकेले मैदान में उतरे। उन्होंने भुजा उठाकर प्रण किया, "मैं उस दिन के लिए कोशिश करूँगा जबकि हिन्दू और मुसलमान अपनी-अपनी कमजोरियों को दूर करके दिल से एक-दूसरे के पास आजायेंगे। मैं नहीं जानता कि वह दिन कब आयेगा, लेकिन इसके लिए जरूरत पड़ी तो मैं अपनी जान भी देने के लिए तैयार हूं।"

और ३० जनवरी की सन्ध्या साक्षी है कि जैसे भगवान् शिव ने अमृत से पूर्व निकलने वाले विष को स्वयं पी लिया था, वैसे ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी राष्ट्र की आगामी अमरता के लिए स्वयं अकेले साम्प्रदायिक कालकूट को पीगये।

उनकी प्रार्थना सभाओं से एक स्वर गूँज उठा—

ईश्वर—अल्ला तेरे नाम।
सबको सन्मति दे भगवान्॥

और दूसरे बोल गूंजे—

भजमन प्यारे राम-रहीम।
भज प्यारे तू कृष्ण-करीम॥

यही नहीं उपनिषद् के "ईशावास्यमिदं सर्वं" के साथ कुरान के शब्द भी गूँजे "अउजबिल्ला···"।

साम्प्रदायिक दुर्वृत्ति के शिकार लोगों ने पुकार लगाई—कुरान बन्द करो। गांधीजी ने कहा—यह नहीं होगा। ईश्वर और खुदा

एक हैं। हिन्दू और मुसलमान में भेद नहीं। देश का विभाजन होगया तो होजाने दो, दिलों के विभाजन को रोको।

लोगों ने कहा—गांधी मुसलमानपरस्त है। वह हिन्दुत्व का दुश्मन है। गांधी ने कहा—आओ, हिन्दू-धर्म का मर्म मुझसे पूछो, सब धर्मों का आदर करना यह हिन्दुओं का परम धर्म है। अबलाओं, असहायों और शरणागतों की रक्षा करना यह हिन्दू का धर्म है। सत्य को समझो। अहिंसा को अपनाओ। भीड़ चिल्लाई—हमें अहिंसा नहीं चाहिए। हम ज्यों-ज्यों दबते हैं, हमें कमज़ोर समझा जाता है। हिन्दुओं के हथियार उठे, सिखों की कृपाणें चमकीं—हम पंजाब का बदला लेंगे। गांधी बोले—ख़बरदार, मेरे मरने के बाद! क्या कलकत्ता और क्या दिल्ली इसी कार्य के लिए उन्होंने आमरण अनशन किये और देश में बढ़ती हुई साम्प्रदायिक भावनाओं की नींव हिलादी।

१५ अगस्त के बाद अंग्रेज़ों को गया हुआ समझकर देश में प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने सिर उठाया। नई कांग्रेस सरकार को उन्होंने तबाह करने की सोची—पर सोचते-सोचते लगा कि जब तक गांधी है तब तक वे लाख क्यों न होजायँ कुछ न कर सकेंगे और गांधीजी को रास्ते से हटा देने का संकल्प किया गया।

२० जनवरी को उनकी प्रार्थना-सभा में बम फेंका गया, पर गांधीजी विचलित नहीं हुए। उन्होंने मृत्यु को अपना 'परम मित्र' बताया और कहा कि 'इस घृणाभरे पागलपन के वातावरण में मैं १२५ वर्ष जीना नहीं चाहता।'

महानिर्वाण

आखिर ३० जनवरी, ४८ की सर्वग्रासिनी संध्या अपना खूनी मुख फाड़े हुए पश्चिम में उदित हुई। इस दिन सरदार पटेल के साथ गांधीजी की लम्बी बातचीत चली। उन्हें प्रार्थना के लिए थोड़ी देर होगई। वह आभा और मनु के साथ प्रार्थना-भूमि की ओर चले। इस दृश्य का वर्णन अमरीकी लेखक विन्सेन्ट शियन के शब्दों में इस प्रकार है :—

"प्रार्थना-स्थल पर खड़ा-खड़ा मैं बी० बी० सी० के दिल्ली-स्थित संवाददाता बॉब स्टिमसन से बातें कर रहा था, परन्तु मेरी आंखें बिरला-भवन की ओर थीं। उसी समय महात्माजी घास पर हमारी ओर आते दिखाई दिये। आज वह लतागृह से नहीं आरहे थे, जैसा कि मैंने उन्हें पहले कई बार आते हुए देखा था। अस्त होते हुए सूर्य के प्रकाश में वह स्वस्थ और बलवान दिखाई देते थे। दोनों लड़कियों (मनु और आभा) के कन्धों पर हाथ रखे हुए वह कुछ झुके हुए थे। वह सीढ़ियों तक आये। इसके बाद मैं उन्हें नहीं देख सका, क्योंकि भीड़ ने सीढ़ियों के ऊपर के भाग को घेर लिया। तभी मैंने चार छोटे तेज धड़ाके सुने और जब मुझे यह भान हुआ कि ये गोलियाँ निस्सन्देह महात्माजी को ही लगी हैं और एक महान् नाट्य का अन्तिम अनिवार्य भाग पूरा होगया है तो मैं इसकी भयानकता से काँप उठा। मैं जानता था कि उन्हें मारने वाला कोई हिन्दू ही होगा, क्योंकि सभी अवतार अपने स्वजनों द्वारा

ही मारे जाते हैं। मैं देखने नहीं गया। मैंने उन्हें उठाकर ले जाते हुए भी नहीं देखा! यद्यपि मैं लगभग डेढ़ घण्टे तक उसी उद्यान में चक्कर लगाता रहा, फिर भी मैं उनके कमरे के शीशे के दरवाजों के पास तक नहीं गया। जिस व्यक्ति को मैंने संसार में सर्वश्रेष्ठ, सबसे अधिक पराक्रमी और सर्वोच्च माना है, उसके शरीर पर लहू देखने की कल्पना-मात्र से मेरा रोम-रोम काँप उठा था।❀

गांधीजी का जीवन जैसा शानदार था, मृत्यु भी उनकी वैसी ही शानदार हुई। भारतीय स्वतंत्रता के सर्वोच्च सेनानी ने उस कायर की गोलियों की बाढ़, जो उनके चरण-स्पर्श करने के बहाने सामने आया था, सीने पर ली और हँसते-हँसते 'हे राम' कह कर अपना नश्वर शरीर त्याग दिया—

'इस घर को आग लग गई घर के चिराग से।'

गांधीजी के स्वर्गवास का समाचार बिजली की तरह सारे संसार में फैल गया। भारत में दुःख का समुद्र उमड़ आया। संसार के समस्त राष्ट्रों ने उनके सम्मान में अपने झंडे झुका दिये।

गांधीजी आजन्म लंगोटी लगाये रहे, उन्होंने सदैव अपने को सत्ता और संपत्ति से दूर रखा, पर उनकी अर्थी का जलूस, शाही दाह-संस्कार, अस्थियों का विविध पवित्र स्थानों में विसर्जन और उनका शोक जिस प्रकार सारे संसार में मनाया

❀ बापू की पावनस्मृतियां

गया, वह सम्मान न तो आज तक किसी को प्राप्त हुआ और न आगे किसी को प्राप्त होने की ही संभावना है।

बहुत दिन पहले रोम्यां रोला ने गांधीजी के सम्बन्ध में कहा था—"एक बात निश्चित है कि चाहे गांधीजी की शक्ति-विजयी न हो, किन्तु वह शक्ति पुनः प्रकट अवश्य होगी। ठीक उसी प्रकार जैसे सहस्र वर्ष पहले मसीहा और बुद्ध के रूप में प्रकट हुई थी। और वह मानव जिसमें यह शक्ति प्रकट होगी, अर्द्धदेवता होगा। वह जीवन-कला का पूर्ण अवतार होगा, जो नवीन मानवता को नवीन मार्ग पर लेजायगा।"

न जाने त्रस्त मानवता कब तक पुनः गांधीजी के आगमन की बाट देखती रहेगी?

अन्तिम दर्शन

हमेशा की तरह अपनी ड्यूटी के घंटे पूरे करके "हिन्दुस्तान" कार्यालय के क्लर्क घरों को वापस जाने लगे थे। छोकरे और चपरासी उनके अस्त-व्यस्त सामान को लापरवाही से आलमारियों में ठूंस रहे थे। सदा की तरह बगल के शरणार्थी परिवार की महिलाएं अपने सूखे-धोये वस्त्र बटोर रहीं थीं। वातावरण में कहीं कोई नवीनता न थी। नीचे चलने वाली रौटरी मशीन की तरह ही दिल्ली की दुनिया सदा की तरह तेजी से अपने ही चक्कर में घूम रही थी, और घूम रही थी।

दूसरे डाक-संस्करण का आखरी पृष्ठ मशीन पर छपने चला गया था। प्रधान सम्पादक घर जाचुके थे और उपसम्पादक लोग फुर्सत में थे कि घर-बाहर की बातों पर अब आराम से राजनैतिक टीका-टिप्पणी कीजाय।

मैंने आँख उठाकर देखा—सूर्य पश्चिम में उतर चुके थे। याद आई कि बच्चे को आज दवा ले जानी है। अँगड़ाई लेते हुए मैंने शरीर को ढीला छोड़ा और जाने के लिए कमरे से बाहर निकल आया।

देखता हूँ कि जनरल मैनेजर लगभग दौड़ते हुए-से हमारे सम्पादकीय विभाग की ओर चले आरहे हैं।

मैंने अचकचाकर उनकी ओर देखा। वह बेहद घबराये

हुए-से जान पड़े। उनकी मुद्रा मुझे कुछ अजीब-सी तो अवश्य लगी, पर मैंने उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। मेरी अवस्था उस समय, सचमुच उसी खिलाड़ी लड़के की-सी थी, जो स्कूल से छुट्टी पाते ही हो-हो करके भाग छूटना चाहता है।

मेरे अज्ञान और लापरवाही मिजाज पर लगभग खीझते हुए-से वह बोले, "आपको पता है गाँधीजी को गोलियां लगी हैं ?"

अखबार के दफतर में काम करते-करते इन बम, गोली, दंगा, दुर्घटनाओं को सुनने और लिखने का इतना आदी होगया हूँ कि साधारणतया ये चीजें मन पर आज वैसा असर नहीं डालतीं जैसा कि आज से बारह साल पहले डाला करती थीं।

सोचा, गोलियां उस वज्रप्राण गांधी पर क्या असर करेंगी? अभी-अभी एक बम भी तो उन पर फैंका गया था, जिसका धूमिल धमाका उनकी गर्दन तक को हिलाने में नाकामयाब रहा।

मैंने उनसे सिर्फ "अच्छा" कहा और बात क्या हुई, चलो, समाचार लेता चलूं, यह सोचकर उस टेलीप्रिंटर मशीन की ओर निकल गया, जहाँ ए० पी० आई० के ताजे तार स्वयं टाइप होकर मिनट-मिनट पर आते रहते हैं।

देखा, मशीन को चारों तरफ से लोगों ने घेर रखा है। न कोई किसी से बोलता है। न कोई किसी से कुछ पूछता है। निस्तब्ध, अपलक, ठगे-से लोग जड़ मशीन की खड़-खड़ में मानो विधि का लेखा पढ़ रहे हैं। प्रथम बार एक अज्ञात आशंका

मेरे मन में बिजली की तरह कौंध गई ! पर किसी से कुछ कहने-पूछने का साहस मुझे नहीं हुआ ।

मैं टेलीप्रिंटर की तरफ तेजी से लपका । नियति के अमिट अक्षरों की तरह वह टप-टप देश के दुर्भाग्य को उगल रही थी । सहसा वह झटका खाकर रुक गई । उपसम्पादकों, रिपोर्टरों और दूसरे प्रेस कर्मचारियों की वे सूखी आंखें जो अब तक मजबूती से काबू में रखी गई थीं, अब उनके बाँध टूट गये । मेरे सिवाय अनेक आंखें उस मशीन की तरह ही टप-टप बरस उठीं ।

मेरी लुटी-सी ढीठ आंखों को सब कुछ समझ-देख लेने के बाद भी कुछ विश्वास-सा नहीं हुआ ! भला, यह अनहोनी कहीं हो सकती थी ? मशीन गलत है । उसने आदमी की गति को कभी पहचाना है जो आज वह सच कहेगी ?

मैंने खोये हुए मनुष्य की तरह "हिन्दुस्तान टाइम्स" के एक संपादक की ओर देखा । उनकी आँखें टेसू के फूल की तरह लाल-गुलाबी होरही थीं । वह अपने मन पर व्यर्थ काबू करने की कोशिश कर रहे थे । पर जब उन्हें मेरी मूढ़ता का जवाब देना ही पड़ा तो उनके मन ने उनकी सारी समझदारी के अंकुश को उठा फेंका और भरी हुई आंखें झर-झर झर उठीं—'सब कुछ समाप्त होगया !'

सब कुछ समाप्त होगया—जैसे किसी ने कलेजे पर मुक्का मारा हो । जैसे कातिल की गोलियों के वे तीन वार—देश की नहीं, हिन्दुत्व की भी नहीं, गांधीजी की तो कदापि नहीं—मेरी

अपनी छाती पर ही हुए हों। लगा कि धरती हिल उठी हो, आसमान फटने वाला हो—एक भूचाल-सा आगया ! मेज, कुर्सी, दावात, टेलीफोन, मशीनें सब हलती हुई-सी दिखाई दीं—जैसे दुनिया ही लड़खड़ा गई हो। हाय, सब समाप्त होगया ! न हुआ हो तो अब होजायगा !

अखबार की नौकरी बुरी होती है। मैं खाली कवि रहता तो ठीक था। पर खाली कवि रहता तो शायद भूखों मरता और हर तरफ से नालायक करार दिया जाता। जग-विरोध को झेलते हुए तपस्या की अग्नि में से कुन्दन बनकर निकलने लायक छाती मेरी कहाँ थी ?

भावावेश की दुनिया में दौड़ते हुए अपने चंचल मन को मुझे लगाम देनी पड़ी। अखबार में किसी के मरने पर ग़म नहीं मनाया जाता। किसी के मातम पर यहाँ की रौटरी नहीं रुकती। जब-जब बाहर की दुनिया के हाथ भय, आशंका, क्रोध, रुदन और आपदाओं से सुन्न होकर रुक जाते हैं, यहां की दुनिया के हाथ तब-तब दूनी तेजी से काम में लगे नजर आते हैं !

कैसा घर, कैसी दवा - मैं वापस अपने सम्पादकीय विभाग में लौट आया कि देखूं हमारे लोग कैसे इस खबर को पत्र में दे रहे हैं ?

लौटकर क्या देखता हूं कि उन पुराने और अपने फन में माहिर उपसंपादकों से जो सबसे अधिक राजनैतिक बहसों में भाग लेते हैं और जो सबसे अधिक अपने को निस्पृह बुद्धि-

वादी घोषित करते हैं, गांधीजी की मृत्यु का समाचार नहीं लिखा जारहा। लिखते हैं, काटते हैं—काटते हैं, लिखते हैं! मन में जैसे सावन-घन उमड़ आये हों—कुछ सूझ नहीं रहा, कुछ समझ में नहीं आरहा! आंखों में जैसे अँधेरा आगया हो—क्या लिखें और क्या न लिखें? जैसे-तैसे तीन-चार व्यक्तियों ने मिल-जुलकर समाचार बनाया।

अगर कोई और दिन होता तो बूढ़े फोरमैन से संपादकों का युद्ध छिड़ गया होता। भला ६ बजे बाद की खबर क्या कहीं मशीन रोककर फिर से सैट की जा सकती है? लेकिन ५५ वर्षीय फोरमैन में आज जवानों का-सा जोश आगया। दौड़कर खुद चलती रौटरी को रुकवाया। खुद हाथ से कम्पोज करने बैठ गये, "बोले, गांधीजी क्या बार-बार मरने आयेंगे?"

गांधीजी क्या बार-बार मरने आयेंगे—सचमुच नहीं। जैसे सहस्र बिच्छुओं ने मुझे एक साथ काट लिया हो। मैंने अपने आपको धिक्कारा—अभागे, आज तू प्रार्थना-सभा में क्यों नहीं हुआ? अंदर के कवि ने कल्पना करते हुए कहा कि क्या ही अच्छा हुआ होता कि गोलियों की वह बाढ़ मैंने अपने शरीर पर ओट ली होती और मेरे प्राण बापू की गोदी में हँसते-हँसते निकल गये होते!

कल्पना कीजिए उस व्यक्ति की, जो कभी नियमित रूप से बापू के प्रार्थना-प्रवचनों में 'जाता रहा हो और जिससे आज भी कुछ ही देर पूर्व प्रार्थना-स्थल पर चलने का आग्रह किया

गया हो, और वह अपने इष्टदेव को खोकर भी आज यह लेख लिखने को बचा बैठा हो ! तो वह अपने इस प्रमाद पर खुद ही डूब न मरे, यही क्या कम है ?

बार-बार अपनी भूल से उत्पन्न पछतावे की चोट मेरे मस्तक पर घन की तरह गिरने लगी। अंतर-पीड़ा से मेरे मन-प्राण छटपटाने लगे--हतभाग्य, जा, तू अंतिम दर्शनों के सौभाग्य से भी वंचित रहा !

मुझसे अपने स्थान पर बैठा नहीं रहा गया। लड़खड़ाता हुआ मैं बिरला-हाउस की ओर चला। बाहर आकर देखा—मैं अपने दुःख में अकेला न था। हजारों डबडबाई, पथराई आंखें मेरे साथ चल रही थीं। सबके मुंह मुरझाये हुए थे। सबके कलेजे मुँह को आरहे थे। सब भविष्य की दुःशंकाओं से भयभीत थे। सब बहुत-कुछ समझ रहे थे। सबकी बुद्धि ने जवाब दे दिया था। गुम-सुम-गुम-सुम जैसे असंख्य चीटियों की कतारें जारही हों—एक-के-पीछे-एक, खोए हुए-से डोर में बंधेसे, किसी लक्ष्य से खिंचे-से।

चलते-चलते मेरी संज्ञा लौट आई। सोचा, अब क्या होगा ? क्या अंग्रेज फिरसे हिन्दुस्तान में लौटेंगे ? क्या दिल्ली के मुसलमान कल का सवेरा देख सकेंगे ? क्या भारत की भावुक जनता इस सदमे को सहकर अपना विवेक खो न देगी ?

कि दुःख की एक लहर ने तभी उड़ते हुए विचारों के पंख काट दिये—हाय, बापू, तुमने तो १२५ वर्ष जीने का विश्वास

दिलाया था ! हाय, वह गोरे-भूरे चरण, घुटनों तक की छोटी-मोटी धोती, सैनिकों जैसी वज्र छाती, हृदय के मर्म को छूती हुई-सी आंखें, सब कुछ सुन-समझ लेने वाले लम्बे-ऊंचे कान, वह सुडौल नासा, वह उन्नत ललाट, वह अमृत-झरते ओठ, वह मुक्त हास्य...क्या अब कभी देखने को नही मिलेंगे ? रो, मेरे दुर्बल मन रो ! रो, और खूब रो, आज देश का सौभाग्य लूट गया ! आज स्वतंत्रता का सुहाग पुछ गया, आज हम सब अनाथ होगये, आज हमारे बापू हमें छोड़कर चले गये !

कि तभी दुःख की गहन सरिता क्रोध की चट्टान से आकर टकरा गई। कौन है यह अविवेकी जिसने बापू पर यों हाथ उठाया ? अहिंसा के देव को समाप्त करने के लिए कौन है जो हिंसा का वाहन बनने को तैयार हुआ है ? किसके धड़ पर आज दो सिर उगे हैं ? किसने आज जनता और सरकार दोनों को खुली चुनौती दी है ? किसने गांधी को मारकर खुद अमर हो जाने का सपना देखा है ? कौन है जो सचाई के रास्ते में से गांधी को हटाकर पाप का आवाहन कर रहा है ? क्या वह अकेला है ? नहीं। क्या ऐसे बहुत हैं ? नहीं। तो यह सब हुआ क्यों, कैसे, आखिर किसलिए ?

आवेश से मेरे पैर लड़खड़ा गये। मुझसे फर्लांगों का रास्ता पैदल पार नहीं किया गया। सवारी पकड़कर जैसे तैसे मैं बिरला-हाउस पहुँचा।

क्या देखता हूँ कि उस छोटे-से प्रासाद को अपने अंक में भर

लेने के लिए एक विशाल जन-समुद्र चारों ओर से उमड़ आया है। सेना और पुलिस भीड़ को बार-बार पीछे ठेलती है, पर जैसे समुद्र में पिछली लहर आगे की लहर को विलीन हुई देखकर और जोश से ऊँची होकर बढ़ती है, वैसे ही जन-समूह की बाढ़ रोके नहीं रुक रही थी। आज क्या लोगों के मन काबू में थे जो सेना और पुलिस उनके तन को काबू में रख पाती ?

हार कर अधिकारियों ने बंधन ढीले कर दिये। मैं दीवाल और झाड़ी फलाँग कर पहले ही अन्दर दाखिल होचुका था। अकुलाई हुई जनता बिरला-हाउस की खिड़की-खिड़की पर अपने प्यारे बापू को खोज रही थी।

लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाते, रोते, रूमाल से आंखें पोंछते नेहरूजी आये। खोये-से मौलाना आजाद पहुँचे। लार्ड माउन्ट बेटन, विदेशी राजदूत, छोटे-बड़े सैकड़ों नेता, बापू के आश्रम-वासी कोई श्रद्धा से विनत, कोई परिस्थिति से संजीदा, कोई रोता, कोई बिलखता—सब वहां पहुँचे। पत्थरों को पिघलते हुए लोगों ने सुना हो, मैंने उस दिन देखा। बड़े-बड़े रौबीले जन रो रहे थे, बड़े-बड़े संग दिल उस दिन सुबक रहे थे !

दर्शनों के लिए बापू का शव छज्जे पर रखा गया। कतार में लगे हुए मैंने उन्हें अंतिम प्रणाम किया। पलक जो उठे तो देखकर आश्चर्य हुआ ! कौन कहता है कि बापू मर गये ? सच-मुच उनके मुंह पर मृत्यु का कोई निशान नहीं था। एक अमृत

मुस्कान उनके मुंह पर खेल रही थी। लगता था जैसे गहरी नींद में कोई सुख स्वप्न देख रहे हों !

पर स्वप्न स्वप्न ही था। बापू अंनत निद्रा में लीन होचुके थे। वह इस जगती के कल्मप-कोलाहल से दूर, बहुत दूर जाचुके थे। वह उस देश में पहुँच गये थे—जहाँ शोक नहीं और आह नहीं। दिल्ली के कुछ लाख क्या, हिन्दुस्तान के करोड़ों भी रो-रोकर अब उन्हें वापस नहीं ला सकते थे।

पर हिन्दुस्तान के लोगों को यदि उन्हें वापस लाना होता तो खोने ही क्यों देते ?

कि तभी वैराग्य-भावना ने मुझसे कहा—यह जीवन और मरण क्या आदमी के अपने वश की चीज हैं ? जो आता है उसे जाना ही होता है। गांधीजी भी यहाँ सदा कैसे रह सकते थे ?

चेतना बोली—नहीं, गांधीजी हिन्दुस्तान से कभी नहीं जा सकते। दुनिया युगों-युगों तक उनके स्मरण-मात्र से धन्य होती रहेगी।

तभी मेरे कवि ने मुझसे कहा—

हजारों वर्ष में ऐसा मसीहा एक आया था।
कि जिसने आदमी को आदमी बनना सिखाया था।

पर पशु ने क्या जबाब देता ?

पुण्य स्मृति

वह दिन याद आते हैं जब बापूजी दिल्ली में विराजमान थे और उनकी प्रार्थना-सभाओं से यहां की भूमि पावन बन गई थी। उन स्वर्णिम संध्याओं की पवित्र स्मृति आज भी वैसी ही ताजी है, जब प्रति दिन दिल्ली की घड़ियों की सुइयां अपने अंकों पर प्रहरी की तरह सीधी होकर ६ बजातीं तो राशि-राशि जन-मण्डलियों के अभ्यासी पग बापू के प्रार्थना-स्थल की ओर चलने को स्वतः ही आतुर हो उठते।

प्रकृति के अटल नियमों की भांति ठीक समय पर प्रार्थना प्रारंभ होती। दो मिनट की शांति के पश्चात् स्थितप्रज्ञ के लक्षण बतलाते हुए गीता के पुण्यश्लोक वातावरण में भर जाते। प्रार्थना में कुरान की आयतें होतीं, सूर-मीरा के भजन होते, पर सबसे अधिक प्राणस्पर्शी तो वह दृश्य होता, जब पश्चिमाभि-मुख सूर्य की गैरिक किरणों में डूबे हुए सहस्राधिक कंठ अपनी समवेत स्वरलहरी में एक ताल पर सुमधुर स्वर में झंकार उठते :—

"रघुपति राघव राजा राम।
पतित पावन सीताराम॥"

सामूहिक स्वरों से निसृत राम-नाम का पावन उद्घोष मन-प्राण को झकझोर देता, रोम-रोम गद्गद् हो आता, एसा

लगता मानो जीवन के सारे विकार राम-धुन की प्रति ताल पर दम तोड़ रहे हों। पक्षी घर लौट रहे होते, सूर्य डूबा-डूबा होता, आंखों के सामने सहस्रों हाथ एक ताल पर गिर और उठ रहे होते—समस्त अहं गल जाता। लगता कि बाहर-भीतर जो कुछ है वह उज्ज्वल है, ऊर्जस्वल है, दिव्य है और एसा है जो अलौकिक और आनंदातिरेक से परिपूर्ण है।

गौतम, कपिल, कणाद और मेरे पूर्व पुरुष भगवान् व्यास को जिन्होंने देखा होगा उनकी शुभ दृष्टि को मैं प्रणाम करता हूँ। मैंने तो तक्षशिला, सारनाथ और मथुरा में भगवान् तथागत की कुछ दिव्य मूर्तियों के दर्शन किये हैं। उन प्रस्तर शिलाखण्डों के आधार पर कल्पना ने बुद्धत्व का जो मोहक चित्र अंकित किया था, उसमें बापू के शुभ दर्शन से रंग उभर आये हैं। प्रथम बार प्रार्थनानिरत, ध्यानावस्थित गांधीजी को देखा तो अनुभव हुआ कि भगवान् बुद्ध का व्यक्तित्व कितना महिम, कितना उदात्त और कितना प्राणस्पर्शी रहा होगा। बापू के प्रार्थना-प्रवचनों में बार-बार यह अनुभव हुआ कि स्वयं तथागत ही इस जगतीतल पर एक बार फिर यह उद्घोषित करने को अवतीर्ण हुए हैं कि "हे भटके हुए संसार के प्राणियो, बुद्ध की शरण जाओ, संघ की शरण जाओ, धर्म की शरण जाओ।"

गांधीजी कहते—सत्य ही ईश्वर है। वह एक, अविभाज्य और सर्वोपरि है। प्रेम-धर्म ही उसकी प्राप्ति का परम साधन है। सब धर्मों का मूलमंत्र प्रेम है। इसलिए प्रेम को अपनाओ।

ईश्वर से प्रेम करना हो तो पहले उसके बन्दों से प्रेम करना सीखो। हिन्दू क्या, मुसलमान क्या, नीच क्या, ऊंच क्या, जाति क्या, धर्म क्या, वर्ग क्या और उनसे विद्वेष क्या—सब कुछ उस एक का ही पसारा है। वही एक सर्वात्म भाव से सब में व्यापक है।

गांधीजी का मार्ग अपने को खोकर परम तत्त्व को पाना था। वह आधुनिक युग के परम ऋषि, परम भागवत और परमात्म पुरुष थे। वह सबके लिए वंदनीय थे। वह सबके बापू थे। वह सब के नेता थे। क्योंकि वह सर्वात्म भाव से सर्वोदय चाहते थे।

युगावतार गांधी

गांधीजी गये—एक दिव्य प्रकाश धरती से उठ गया। दीन-हीन मनावता का एक सहारा था-वह छीन लिया गया। मंजिल तक, बिना भटके हुए, ले जाने वाली दो आँखें थीं--जो बन्द होगईं। राष्ट्र के सदाचार पर एक तर्जनी-सी उठी हुई थी, जो असत् और अन्याय को स्पष्ट इंगित करती थी, उधर बढ़ते हुए डगों को मजबूती से रोकती थी—गिर गई। जगती के शोषितों, बेकसों, अछूतों और गुलामों की एक विजयिनी रण-हुंकार थी, जो अपना काम पूरा किये बिना ही अचानक बन्द होगई।

गांधीजी आये-पृथ्वी पर नवयुग का आगमन हुआ। गांधीजी गये एक युग की परिसमाप्ति होगई। गांधीजी आये तब घन-घोर रात्रि थी, चराचर तम में डूबा हुआ था, उलूकों की दुनिया थी और था निशाचरों का सर्वत्र साम्राज्य। गांधीजी गये तो पूर्व में अरुणाई उतर आई थी, नई-नई कलियों के धुले लुए मुंह खिलने लगे थे, चराचर नींद छोड़ चुके थे और पृथ्वी पर स्वर्ण बरसना ही चाहता था।

(संसार के इतिहास में ऐसी मिसालें ढूंढे नहीं मिलेंगी कि जहाँ अकेले एक व्यक्ति ने, करोड़ों मनुष्यों के, विविध समुदायों में बँटे हुए, युग-युग से सोये हुए राष्ट्र की, अकेले अपने आत्म-बल से कायापलट करदी हो। भारत-जैसे परम्परा-प्रिय और

सदियों से सोये हुए देश में, उनकी मंत्र-पूत वाणी ने अभिनव जागरण ला दिया।

उन्होंने किसान से कहा, "तू धरती का राजा है, उठ, कर्तव्य को समझ!"

वह मजदूर से बोले, "तू दीन नहीं, श्रम तेरा है और सम्पत्ति भी तेरी है।"

गरीब को मंत्र दिया, "तू दीन कहाँ? भगवान् का सबसे प्यारा है, आ, मेरे पास आ, और निराश न हो।"

राजा को समझाया, "देख, राज तेरा नहीं, जनता का है। जा, जनता को पहचान और उसमें शामिल हो।"

धनी को डाँटा, "ओ रे, धन तेरा नहीं, तू तो मात्र संरक्षक है। चल, इसका सद्व्यय कर।"

शासक से कहा, "कानून तेरा नहीं, खुदा का चलता है। आदमी कानून के लिए नहीं, कानून आदमी के लिए है।"

पंडित-पादरी और मुल्लाओं से कहा, "भटके हुए धर्माधिकारियो, धर्म का मतलब सत्य, यानी ईश्वर की प्राप्ति है। धर्म प्रेम का पन्थ है—फिर घृणा कैसी, द्वेष कैसा, मिथ्याभिमान कैसा? छोड़ो इन्हें और परस्पर गले मिलो।"

दशों दिशाओं को प्रतिध्वनित करती हुई उनकी सर्वोदय की वाणी गूंज उठी, "मनुष्य उठ, सत्य को पहचान, अहिंसा को अपना, अनीति को छोड़ और सबको समान रूप से उन्नति करने का अवसर दे।"

गांधीजी ने क्या समाज, क्या राजनीति और क्या आध्यात्म तीनों में ही महान् क्रान्ति उपस्थित की। जगत का कोई क्रान्तिकारी इन तीनों विकट मोर्चों पर एक साथ नहीं लड़ा। गांधीजी इन मोर्चों पर एक साथ जम कर लड़े ही नहीं, वरन् उन्होंने अपने अमोघ व्यक्तित्व, अटूट तपश्चर्या और उज्ज्वल नैतिक साधनों से तीनों ओर की भीति और भयंकरता को भी नष्ट कर दिया।

अकेले डेढ़ पाव हड्डी के छोटे-से गांधीजी को अपने जीवन-काल में ही जितनी अधिक सफलता और जितनी अधिक यश-प्रशस्ति प्राप्त हुई, वह अभूतपूर्व थी। संसार का कोई महा-पुरुष अपने जीवन-काल में इतना अधिक समादृत नहीं हुआ। हम लोग धन्य थे जो गांधी-युग में पैदा हुए, वह धन्यन्तर थे जिन्होंने उनके काम में हिस्सा बटाया और वह सदैव धन्यतम गिने जायंगे जो गांधीजी के निकट सम्पर्क में आये और जिन्होंने उनका स्नेह और आशीर्वाद प्राप्त किया।

वास्तव में गांधीजी अवतारी पुरुष थे। सहस्रों वर्ष तक जनता उन्हें राम-कृष्ण और बुद्ध की तरह याद करती रहेगी और उनके महान् आदर्श, ठोस रचनात्मक कार्यक्रम और बिरल व्यक्तित्व युग-युगों तक मानव को सत् संकल्पों की ओर प्रेरित करते रहेंगे।

गांधीजी के आदर्श

अमरीकन पादरी श्री होम्स ने कहा है, "जब मैं रोलां का खयाल करता हूँ, तो मुझे टालस्टाय का ध्यान आता है और जब मैं लेनिन की बात सोचता हूँ तो मुझे नेपोलियन का खयाल आता है; पर जब मैं गांधीजी का ध्यान करता हूँ तो मुझे ईसा-मसीह याद आजाते हैं।"

सचमुच गांधीजी ऐसे ही उदात्त चरित्र, आदर्शमना व्यक्ति थे। प्राचीन महर्षियों की तरह उन्होंने अपने सतत जागरूक जीवन का निर्माण बड़ी कठोर साधना से किया था। पहले मां के सम्मुख मांस-मदिरा आदि सेवन न करने की प्रतिज्ञा ली और जब जीवन में वासनाएं तीव्रतम होती हैं, उस अवस्था में, अखंड ब्रह्मचर्य धारण करलिया। जब घर-गिरस्थी जमी, वकालत चमकी, हज़ारों रुपये महीने मिलने लगे, तो सब छोड़ आश्रमवासी होगये। धीरे-धीरे तन की और मन की समस्त आवश्यकताएँ उन्होंने सीमित करदीं। केवल वह पहनने लगे जिससे सामाजिक मर्यादा का पालन हो सके, केवल वह खाने लगे जिससे काम करने के लिए जिन्दा-भर रहा जा सके। क्रम-क्रम करके उन्होंने अपने स्व का नाश कर दिया और अन्त में बिना किसी भेद-भाव के वह जनता-जनार्दन में आत्मसात् होगये।

जीवन-भर गांधीजी प्रेय से श्रेय की ओर गतिमान रहे।

जगत के समस्त-लोक-व्यवहार को उन्होंने लोकदृष्टि से नहीं धर्मदृष्टि से अंगीकार किया। भारतवर्ष में उन्होंने बड़े-से-बड़े राजनैतिक और समाज-सुधार सम्बन्धी आन्दोलन चलाये, पर कहीं भी कूटनीति को प्रश्रय नहीं दिया। उनका प्रत्येक कार्य सत्य-नीति पर आधारित होता था। वह सदैव साध्य से अधिक साधनों की पवित्रता पर बल देते थे। उनका विश्वास था कि बुराई से बुराई नहीं जा सकती। बुराई को मिटाने के लिए हद दर्जे की भलाई की आवश्यकता है।

पर कोई इन विमल विचारों को देखकर यह कहे कि गांधीजी ने जीवन में नये आदर्श कायम किये थे, तो यह कहना, स्वयं गांधीजी के शब्दों में भारी भूल होगी। गांधीजी ने न नये आदर्श कायम किये, न कोई नया 'वाद' चलाया। वह तो श्री रामनाथ सुमन के शब्दों में "पंगु-सी होरही हिन्दू-संस्कृति के पंख थे।" उन्होंने लुप्तप्राय प्राचीन हिन्दू आदर्शों का उद्धार किया और भारतीय संस्कृति के गगनचुम्बी चमकते हुए स्वर्ण-शिखर पर जो अज्ञानांधकार छागया था, उसे अपने सूर्योपम प्रकाश से दूर कर दिया।

गांधीजी के आदर्शों की आधार-शिला ये तीन अविचल तत्त्व हैं—सत्य, अहिंसा और सेवा। यहाँ क्रमशः हम इन तीनों पर थोड़ा विचार करेंगे—

सत्य

सत्य के सम्बन्ध में गांधीजी का कथन यह है—"सत्य की

आराधना (ईश्वर की) भक्ति है। और भक्ति सिर हथेली पर लेकर चलने का सौदा है, अथवा वह हरि का मार्ग है, जिसमें कायरता की गुञ्जाइश नहीं है, जिसमें हार नाम की कोई चीज़ है ही नहीं। वह तो मर कर जीने का मन्त्र है।"*

गांधी-नीति के प्रमुख भाष्यकार श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला ने गांधीजी के सत्य की व्याख्या इस प्रकार की है, "पूर्वग्रह से दूषित न होना, किन्तु सत्य को मानने के लिए सदा तय्यार रहना, और इस कारण असत्य से, फिर वह कितना ही पुराना और बहुमान्य क्यों न हो, और उसमें हम कितने ही आगे क्यों न बढ़ चुके हों, वापस लौटने में भय और लज्जा न रखना, और साथ ही, जिस समय जिस बात के बारे में सत्य का विश्वास हो, उसके लिए अपना सर्वस्व खोने को तय्यार रहना।" ×

जहाँ तक गांधीजी का सम्बन्ध है वह सत् के सिवाय दूसरी किसी चीज की हस्ती ही नहीं मानते थे। परमेश्वर उनके निकट सत्य के रूप में ही मान्य था। उनके जीवन का चरम लक्ष्य सत्य की आराधना और उसीकी सम्यक शोध करना था। वह केवल वचन के सत्य को ही सही नहीं, विचार और आचार में भी सत्य का होना आवश्यक समझते थे। उनका सत्य शुद्ध ज्ञान से समावृत था।

भारतीय इतिहास में सत्यनिष्ठ व्यक्तियों की अखंड परम्परा अनादि काल से चलती आई है। हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, युधिष्ठिर

* मंगल प्रभात. × गांधीवाद समाजवाद।

आदि अनेक व्यक्ति इसके उज्ज्वल उदाहरण हैं। पर यह मानना होगा कि गांधीजी के समान सत्य का साधक अभी तक पैदा नहीं हुआ।

गांधीजी से पूर्व सत्य व्यक्ति के अपने आत्म-कल्याण तक सीमित था। गांधीजी के स्पर्श से व्यक्ति का सत्य समष्टि का सत्य बना। गांधीजी से पूर्व सत्य की एक रहस्यात्मक और आध्यात्मिक स्थिति थी। गांधीजी ने अपने सत्याग्रह से उसे लोक-नीति की भी व्याख्या दी। अब सत्य केवल मृत्यु के बाद स्वर्ग अथवा मोक्ष दिलाने वाला ही नहीं रहा, वह अधिकार और स्वराज्य दिलाने वाला भी बना। गांधीजी का जीवन-वृत्त डूब जाय, भारतवर्ष और दुनिया में चाहे अनहोनी राज्य और समाज क्रांतियां हों, नूतन-पुरातन सब-कुछ भले नष्ट-भ्रष्ट होजायं पर गांधीजी अपने सामूहिक सत्य-प्रयोग के लिए सदैव अमर ही नहीं रहेंगे, उनका सत्य-दीप सदैव पथ-भ्रष्ट मानव समुदाय का पथ आलोकित करता रहेगा।

अहिंसा

सत्य यदि गांधीजी का चरम लक्ष्य था तो अहिंसा उस तक पहुँचने का साधन थी। गांधीजी ने अहिंसा को दूसरा नाम प्रेम-मार्ग दिया था। अहिंसा के सम्बन्ध में उनका कहना था कि—

"अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है, जो आज हमारी दृष्टि के सामने है। किसीको न मारना इतना तो है ही—कुविचार-मात्र हिंसा है, उतावल (जल्दबाजी) हिंसा है, मिथ्या-भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी

का बुरा चाहना हिंसा है, जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है।"※

गांधीजी अहिंसा को परम धर्म मानते थे। उनके निकट सत्यरूपी प्रभु के साक्षात्कार का एक ही मार्ग था—अहिंसा।

उनके पास अंदर और बाहर के शत्रुओं से लड़ने का एक-ही शस्त्र था—अहिंसा। वह हर प्रकार के अधर्म का पशुबल से नहीं, अहिंसक आत्मबल से सामना करते थे। क्योंकि उनका विश्वास था कि संसार में बुरा कोई नहीं है। सब में ईश्वरीय सद्वृत्तियां मूलरूप से निवास करती हैं। इसीलिए ही वह दुष्ट को नहीं, दुष्टता को मिटाना चाहते थे। वह मनुष्य-स्वभाव में से वैर और हिंसा को निकाल कर प्रेम या अहिंसा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे।

गांधीजी की अहिंसा निर्भयता पर स्थित थी। उसमें कायरता को स्थान नहीं था। गांधीजी अपनी अहिंसा द्वारा लोगों को मरने का इल्म सिखाना चाहते थे। उनका हृदय-परिवर्तन की नीति में दृढ़ विश्वास था। वह भगवान बुद्ध के इस मन्त्र में पूरा विश्वास रखते थे कि—"अक्रोधेन जयेत् क्रोधं, असाधुं साधुना जयेत्" अर्थात् क्रोध को शांति से और दुष्ट को सद्व्यवहार से जीतना चाहिए।

गांधीजी की अहिंसा असमर्थों का हथियार न होकर सबलों का मरण-संकल्प थी। अपनी इस अहिंसक पद्धति से उन्होंने

※ मंगल प्रभात।

दक्षिण अफ्रीका और भारत को मुक्ति दिलाई। अमित पराक्रमी और जिसके राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, उस ब्रिटिश साम्राज्य से पूरे ५० वर्ष तक लड़े। मगर क्या मजाल कि माथे पर एक शिकन भी आई हो !

जब दुनिया भौतिकता के पथ पर अग्रसर होरही थी, जब हवाई जहाज, टैंक और अणुबमों से साम्राज्य जीते और स्थिर किये जारहे थे – तब गांधीजी असहयोग और उपवासों से लड़ रहे थे। जब दुनिया के राजनीतिज्ञ बलाबल की राजनीति आजमा रहे थे, जब संसार में कूटनीति और गुटबन्दी का बोल-बाला था, तब गांधीजी अकेले अहिंसक समाज की पुनर्रचना में निमग्न थे। जब भारत में सर्वत्र साम्प्रदायिक अग्नि सुलग रही थी, लोग एक दूसरे के खून के प्यासे होरहे थे, जब नोआखाली जल रही थी, तब गांधीजी अकेले पांव-पांव, गांव-गांव घूमकर अपनी अहिंसा को आजमा रहे थे।

दुनिया के इतिहास में क्रांतियां अनेक हुई हैं। भारत और मिश्र ने बड़ी-बड़ी बहादुरियां बताई हैं। चीन के लोगों ने सहस्रों मील लम्बी दीवार खींची है, अरबों और मुगलों ने बड़े-बड़े साम्राज्य बनाये हैं, इग्लैंड और जर्मनी में भयङ्कर युद्ध हुए हैं, फ्रांस और रूस में महान् क्रांतियां भी हुई हैं, पर चिराग लेकर देखिए, गांधीजी की सी इस अहिंसक सफल क्रांति की मिसाल दुनिया के पर्दे पर किसी भी जाति के इतिहास में कहीं नहीं मिलेगी।

सेवा-भावना

गांधीजी की गणना दुनिया के महान् राजनीतिज्ञों में की जाती है; पहुँचे हुए आध्यात्म--वेत्ता, पादरी और पीर ऊँचे स्वर से उन्हें दुनिया का सबसे बड़ा सन्त और महात्मा घोषित करते हैं; और जैसा कि दुनिया में, और खासकर हिन्दुस्तान में, होता आया है, १००--२०० वर्ष बाद वह निश्चय ही अवतार की तरह पूजे जायंगे। लेकिन गांधीजी ने कभी अपने आपको राजनीतिज्ञ होने का दावा नहीं किया। अपने को अवगुणों का आगार बताकर सदैव उन्होंने संत की संज्ञा को अस्वीकार किया और भविष्य की पीढ़ियां कहीं मूर्खतावश उन्हें अवतार न समझ बैठें, इसलिए वह स्पष्ट आदेश देगये कि मेरे नाम पर मन्दिर न बनाये जायं, मेरी मूर्त्तियों की पूजा न हो, मैं अवतार या पैगम्बर नहीं, मैं तो सत्यमार्ग का केवल एक राही हूँ। सेवा मेरा परम-धर्म है। मैंने कोई अलौकिक कार्य नहीं किया। जो मुझसे बन पड़ी वह जनता की सेवा ही मैंने की है।

सत्य यदि गांधीजी का लक्ष्य था और अहिंसा यदि उनका साधन थी तो सेवा उनका कर्म था। उनका कहना था कि सत्य की प्राप्ति सेवा द्वारा ही हो सकती है और एक अहिंसक ही सच्चा सेवा-भावी बन सकता है।

गांधीजी जीवन-पर्यंत सेवा-कार्य में सन्नद्ध रहे। जबसे होश सम्भाला, तबसे, जहाँ उन्हें मानवता संकट में दिखाई दी, जहाँ कहीं शोषण और वंचना का साम्राज्य नजर आया, वह अपनी

लकुटी लेकर सेवा के लिए आगे होगये। चम्पारन और खेड़ा के किसान, अहमदाबाद के मजदूर, पंजाब के पीड़ित, देश के समस्त हरिजन, आदिवासी और अल्पसंख्यक उनकी सेवा और सहायता से ही उन्नत तथा अभय होसके। अन्तिम दम तक वह संत्रस्तों की सेवा में ही लगे रहे। उन्होंने अन्याय, अत्याचार और शोषण से कोटि-कोटि मानवों का उद्धार करने के लिए लाखों स्वयंसेवक, हजारों सेवाभावी कार्य-कर्त्ता खड़े कर दिये। संसार के शोषित उनकी ओर आशा भरी नजरों से देखने लगे। वह दुनिया के बेकसों की आवाज बन गये। पशु बने हुए मानव के उद्धार के लिए उन्होंने अपना जीवन होम दिया। इसी अटूट और महान् सेवा का ही यह परिणाम था कि वह शत्रु और मित्र सबके विश्वासपात्र थे, सब उनसे सलाह लेते थे, क्योंकि सब उन्हें अपना उद्धारक, त्राता और बापू समझते थे।

बापू ने भारतीय राष्ट्र को ही अपने सेवा-बल से जागृत नहीं किया, उन्होंने अपनी सेवा-भावना से दुनिया में एक मिसाल कायम की कि किस तरह प्रतिपक्षी का बिना अहित किये हुए पीड़ितों की सेवा की जा सकती है। बिना घृणा और बर-बादी के दुनिया में सुख का साम्राज्य लाया जा सकता है। बिना एक को मिटाये हुए दूसरे को बनाया जा सकता है। उन्होंने सम-भाव का केवल नारा ही नहीं लगाया, अपितु दुनिया में समता स्थापित करने के लिए उन्होंने कार्य भी किया। उन्होंने केवल

सेवा का शास्त्र ही नहीं बताया, वह उस पथ पर स्वयं चले भी। यही उनके नेतृत्व का कारण था, यही उनकी महानता थी।

गांधीवाद और समाजवाद

गांधीजी के इन आदर्शों और रीति-नीतियों को लेकर उनके जीवन-काल में ही गांधीवाद की चर्चा होने लगी थी और अब तो इस चर्चा ने और भी जोर पकड़ लिया है। पर गांधीजी सदैव वाद-विवादों से दूर रहते थे। तत्त्व-चर्चा से अधिक उनकी कर्म में आस्था थी। उन्होंने साफ-साफ कह दिया था:—

"गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, और न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने किसी नये तत्त्व या सिद्धान्त का आविष्कार किया है। मैंने तो सिर्फ जो शाश्वत सत्य हैं, उनको अपने नित्य के जीवन और प्रति दिन के प्रश्नों पर; अपने ढंग से उतारने का प्रयास-मात्र किया है।......जो राय मैंने कायम की है, और जिन निर्णयों पर मैं पहुँचा हूँ, वे भी अन्तिम नहीं हैं। हो सकता है मैं कल ही उन्हें बदल दूं। मुझे दुनिया में कोई नई चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आये हैं। मैंने तो जहाँ तक मैं कर सका, इन दोनों के अपने जीवन में प्रयोग-भर किये हैं। ऐसा करते हुए कई बार मैंने गलती भी की है, और उन गलतियों से मैंने सीखा भी है। मतलब, जीवन और उसके प्रश्नों द्वारा मुझे सत्य और अहिंसा के आचरण-गत प्रयोग करने का अवसर मिल गया है। स्वभाव

से मैं सत्यवादी तो था, किन्तु अहिंसक न था। ... सत्य की उपासना करते-करते ही मुझे अहिंसा भी मिली है।

"ऊपर जो कुछ मैंने कहा है, उसमें मेरा सारा तत्वज्ञान, यदि मेरे विचारों को इतना बड़ा नाम दिया जा सकता हो तो, समा जाता है। आप उसे "गांधीवाद" न कहिए, क्योंकि उसमें "वाद" जैसी कोई बात नहीं है।"

जब गांधीजी स्वयं अपने वाद को अस्वीकार करने का आग्रह करते हैं तब उनके अनुयायिओं का उसके अस्तित्व के लिए आग्रह कैसा? गांधीजी ने हमें वाद नहीं एक कार्य-पद्धति दी है, जिसके अनुसार हम जगत के जीवन की प्रेम के आधार पर अहिंसक रचना कर सकते हैं।

जहाँ तक समाजवाद का सम्बन्ध है गांधी-कार्य-पद्धति का उससे कोई विरोध नहीं है। यह तो एक ही समस्या को हल करने के दो पहलू हैं। एक अन्तर्मुखी है, दूसरा बहिर्मुखी। एक भौतिकता में विश्वास रखता है। दूसरा जीवन के शाश्वत सत्यों में। एक केवल बुद्धिवाद पर आधारित है, दूसरे में बुद्धि-विवेक के साथ धार्मिक श्रद्धा का भी पुट है। एक यंत्रों में विश्वास करता है दूसरा गृह-उद्योगों में। दोनों की सभी विभिन्नताओं को यदि श्री के० संतानम के शब्दों में कहा जाय तो "समाजवाद को वैज्ञानिक भौतिकवाद" और गांधीवाद को "क्रियाशील आदर्शवाद" कहा जा सकता है।

गांधीवाद और समाजवाद दोनों ही जगत की गरीबी और विषमता को नष्ट करना चाहते हैं और जहाँ तक उद्देश्य का

सवाल है दोनों ही अभिवन्दनीय हैं। विरोध सिर्फ कार्य-पद्धति में है। समाजवाद वर्ग-संघर्ष में विश्वास रखता है। वह क्रांति द्वारा सम्पन्न वर्ग को नष्ट करके सत्ता सर्वसाधारण के हाथों में इसलिए सौंपना चाहता है कि एसे समाज का निर्माण हो सके जिसमें सब समान हों। गांधीजी के सिद्धान्त किसी को नष्ट करना नहीं सिखाते। वह हृदय-परिवर्तन में विश्वास रखते थे। वह दीन-दुखियों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करना चाहते थे और सम्पन्नों से कहते थे कि सम्पत्ति तुम्हारी नहीं, जनता की है, तुम तो इसके मात्र "ट्रस्टी" हो। फिर जनता से तात्पर्य उनका शहरी पढ़े-लिखे या केवल मिलों के मजदूर से ही नहीं था, उनकी जनता में गांवों के किसान, मिलों के मजदूर, शहरी, आदिवासी सब थे। वह सबका भला चाहते थे। वह सर्वोदय के हामी थे।

सर्वोदय

गांधीजी के सर्वोदय की कल्पना में, ऐसे समाज का निर्माण था जिसमें धर्म, जाति या वर्णगत कोई भेद न हो। न जिसमें कोई ऊंचा हो न नीचा, न अमीर हो न गरीब और न कोई शासक हो न शासित। "वह समाज स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि दूसरों की सेवा के लिए, यज्ञ-भावना को लक्ष्य में रख कर बने। जिस समाज में शोषण न हो, विद्वेष न हो, अज्ञान न हो, अन्याय न हो, न कोई अन्याय करे, न कोई अन्याय सहे। जिस समाज में स्त्री-पुरुषके समान अधिकार हों और प्रगति करने के लिए हर एक को

समान अवसर हों। अधिकार मांगने से नहीं, बल्कि कर्तव्य-पालन द्वारा स्वतः प्राप्त हों। कोई व्यक्ति खाली हाथ न बैठ सके, सबको काम मिले और परिश्रम के उचित दाम मिलें। हर एक को खाने के लिए अन्न, पहनने को वस्त्र और रहने को घर मिले। जिस समाज में कायदे-कानून का बन्धन कम-से-कम हो, धन को कोई महत्व न दिया जाय, बल्कि एक दूसरे के परिश्रम से प्राप्त की हुई आवश्यक वस्तुएं बदलने के तरीके से (वस्तु-विनिमय से) प्राप्त हो सकें। जिस समाज में वर्ग-कलह न हो, केन्द्रीकरण न हो, झूठ, धोखा और चोरी न हो, रिश्वत और काला-बाजार न हो और कन्ट्रोल लगाने की जरूरत ही न पड़े।"* गांधीजी इस प्रकार के अहिंसक समाज की स्थापना करना चाहते थे। इसीको वह राम-राज्य कहते थे।

एकादश-व्रत

ऐसे अहिंसक समाज की स्थापना करने के लिए वह लोगों को एकादश व्रत पालन करने का उपदेश देते थे—

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भय-वर्जन॥
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना।
ही एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रत निश्चये॥ ×

अर्थात् अहिंसक समाज के अनुयायिओं को अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीर की मेहनत,

---

* बापू के चरणों में, × विनोबा भावे कृत

अस्वाद, निर्भयता, सब धर्मों की समानता, स्वदेशी और अस्पृश्यता-निवारण इन व्रतों का नम्रतापूर्वक पालन करना चाहिए।

गांधीजी चरित्र-बल या नैतिकता पर बड़ा जोर देते थे, नम्रता को वह मनुष्य का सबसे बड़ा गुण मानते थे और उनका कहना था कि मानव-समाज का प्रत्येक व्यक्ति जब तक असंग्रह व्रत का कठोरता से पालन नहीं करेगा, तब तक नये समाज की आदर्श रचना नहीं हो सकेगी।

वह हमेशा हक से फर्ज को बड़ा बताते रहे और उनकी सब से बड़ी खूबी यह रही कि उन्होंने आदर्श कायम ही नहीं किये, स्वयं उनका पालन भी किया। वह वही बात कहते थे जिसका कि स्वयं पालन कर सकते थे। उन्होंने कहा पीछे, किया पहले। जीवन और कर्म का, आदर्श और व्यवहार का इस प्रकार समन्वय करने वाला महात्मा दुनिया में दूसरा पैदा होना कठिन है।

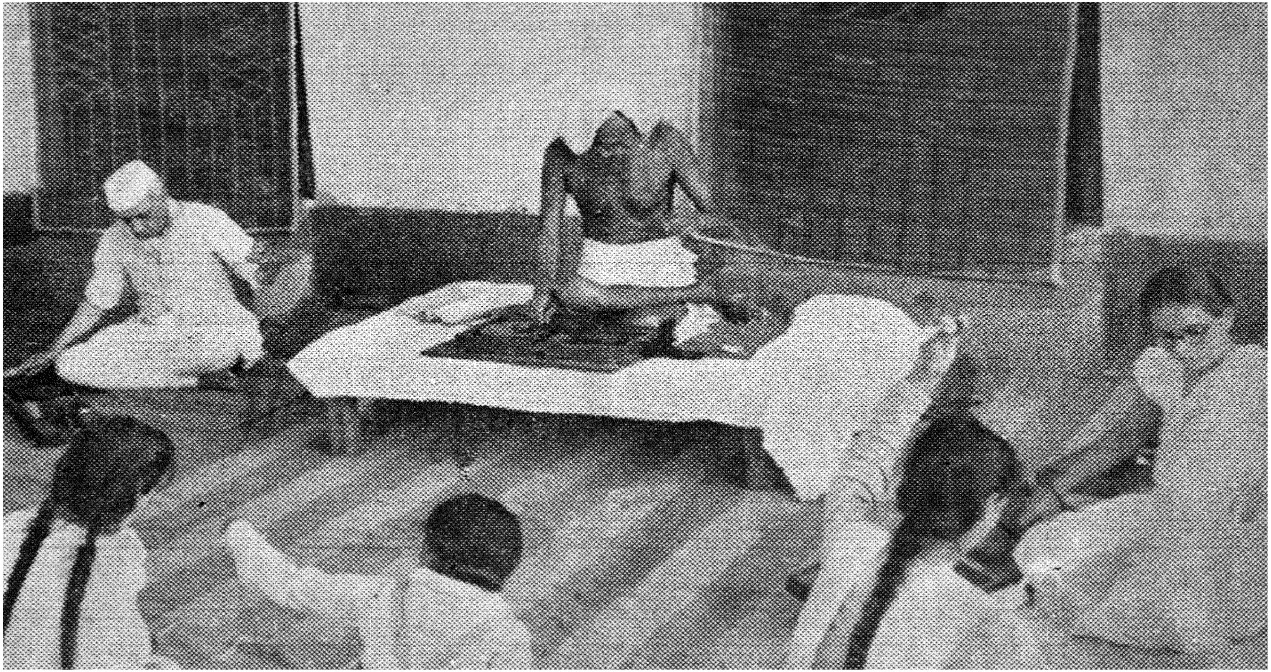

चरखा गांधीजी के रचनात्मक कार्य-क्रम में सर्वोपरि था। चित्र में अखंड चरखा-यज्ञ चल रहा है. जिसमें नेहरूजी भी भाग लेरहे हैं।

रचनात्मक कार्यक्रम

गांधीजी देश के सब से बड़े नेता और बापू इसलिए नहीं थे कि उनके बहुत बड़े आदर्श थे या उन्होंने देश की खातिर बहुत बड़े त्याग किये थे। वह हमारे नेता और राष्ट्रपिता इसलिए बने कि उनके पास स्वराज्य की लड़ाई के लिए ही नहीं, राष्ट्र के नव-निर्माण के लिए भी मौलिक, अचूक और अनुपम रचनात्मक कार्य-क्रम था। पूरे तीस वर्ष तक देश के नेतृत्व की बागडोर उनके हाथ में रही। उन्होंने शांतिकाल और क्रान्तिकाल दोनों में भारतीय जनता का पथ-प्रदर्शन किया। उन्होंने जड़, पुरातन, प्रतिक्रियावादी और शोषक तत्वों के उन्मूलन का ही मार्ग नहीं बताया, वरन् विध्वंस के खंडहरों पर नवसृजन की नींव भी रक्खी। वह कुशल सेनापति की तरह युद्धकाल में ही जागृत नहीं रहे, शान्ति काल में भी उन्होंने अपनी तैयारी जारी रखी और अन्तिम विजय के लिए अपनी अहिंसक सेना को शिक्षित करते रहे, नये सैनिकों की भर्ती होती रही और युद्धकाल के लिए आवश्यक रण-सामग्री संचय की जाती रही। यही कारण था कि स्वतंत्रता के भीषण संग्राम में उन्होंने शानदार विजय प्राप्त की।

गांधीजी की सफलता का रहस्य उनके रचनात्मक कार्यक्रम में निहित है। वह रचनात्मक कार्यक्रम को ही स्वराज्य की कुंजी कहा करते थे। उनका कहना था:—

"कार्यकर्ताओं को पक्के तौर पर समझ लेना चाहिए कि रचनात्मक कार्यक्रम पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का अहिंसक और सत्यमय मार्ग है। कार्यक्रम की कार्य में पूर्ण प्रगति ही पूर्ण स्वराज्य है। रचनात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य राष्ट्र का निर्माण बिल्कुल नींव से, जड़ से करना है।"

रचनात्मक कार्यक्रम को वह "सत्य और अहिंसक साधनों से पूर्ण स्वराज्य की रचना का काम" कहा करते थे। उनका उद्देश्य केवल परदेशी के शासन की परिसमाप्ति ही नहीं था। वह जिस पूर्ण स्वराज्य या रामराज्य के लिए प्रयत्नशील थे, उसके सम्बन्ध में उनका कहना था—

"पूर्ण स्वराज्य का अर्थ है राष्ट्र के प्रत्येक अंग की स्वतंत्रता—जिसमें जाति, रंग (काला-गोरा) और धर्मों का भेद किये बिना जनता के हर फिरके, गरीब-से-गरीब फिरके को भी, पूर्ण स्वराज्य हो।"

गांधीजी क्या चाहते थे ?

वास्तव में गांधीजी हिन्दुस्तान के उस सनातन सांस्कृतिक ढांचे को, जिसे अंग्रेजों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, पुनः मजबूत बनाना चाहते थे। वह गांवों की, गांव-पंचायतों की और पंचायती-राज की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते थे। वह ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जहाँ कानूनों की कम-से-कम आवश्यकता पड़े। वह चाहते थे कि सब अपने फर्ज को स्वयं पहचानें और बिना मांग के ही उन्हें अपने हक मिलते रहें। गांधीजी की सबसे बड़ी चाह यह थी कि सत्ता और पूंजी किसी एक के या

कुछ लोगों के हाथ में नहीं रहें। वह विकेन्द्रीकरण चाहते थे। गांधीजी हिन्दुस्तान के जन-जन को स्वाश्रयी, स्वावलम्बी और स्वतंत्र बनाना चाहते थे। वह अन्न-वस्त्र के लिए विदेशों के मुहताज बनना नहीं चाहते थे। वह मशीन को मनुष्य के लिए अभिशाप मानते थे और इसीलिए भारत के गृह-उद्योगों को इस प्रकार उन्नत करना चाहते थे कि लोग अपनी आवश्यकताओं के लिए मशीनों पर यानी विदेश पर निर्भर न रहें। आततायी मशीनों को ठप्प करके उनकी स्वतंत्रता और जीवनी-शक्ति को समाप्त न करदें। वह हर हिन्दुस्तानी को तन-मन दोनों से पूर्ण स्वस्थ बना देना चाहते थे। उनका कहना था कि नीरोग तन में ही नीरोग मन निवास कर सकता है। वह सफाई और स्वास्थ्य के आधार पर आदर्श हिन्दुस्तान का निर्माण करना चाहते थे। वह देश से खर्चीले विदेशी इलाज को समाप्त करके यहाँ प्राकृतिक चिकित्सा चलाना चाहते थे। वह हिन्दुस्तानियों की मानसिक गुलामी को दूर करने के लिए यहाँ से गुलाम और बेकार बनाने वाली शिक्षा को हटाना चाहते थे और उसकी जगह ऐसी बुनियादी तालीम जो तन-मन को विकसित करे और लोगों को काम दे, फैलाना चाहते थे। वह देश में से छुआछूत के भूत को मार भगाना चाहते थे। वह यहाँ सच्ची कौमी एकता देखना चाहते थे। वह देश में, देश की, अपनी राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। वह किसानों को भूमि का सही राजा बनाना चाहते थे। वह चाहते थे कि मजदूर और पूंजीपतियों के बीच की खाई दूर होजाय। वह विद्यार्थियों को राष्ट्र के सुदृढ़

सेनानी और योग्य नागरिक बनाना चाहते थे। स्त्रियों को भोग की नहीं, जीवन की सहचरी बनाना चाहते थे। वह आदि-वासियों और जरायमपेशा व्यक्तियों को अज्ञानांधकार से दूर करके उन्हें मानवोचित अधिकार प्रदान करना चाहते थे। शराबबन्दी हिन्दुस्तान में लागू हो यह उनकी बड़ी चाह थी। गांधीजी वास्तव में हिन्दुस्तान का ऐसा स्थायी भला चाहते थे कि यह केवल स्वतंत्र ही न हो, इसकी स्वतंत्रता इतनी स्थायी भी रहे कि अहिंसा के आधार पर संगठित इस देश की मौलिक स्वतंत्रता का अपहरण संसार की कोई भी हिंसक शक्ति न कर सके। उनका रचनात्मक कार्यक्रम इन्हीं बातों पर आधारित था।

चाह की पूर्ति

गांधीजी केवल चाहते ही न थे अपनी चाहना के लिए सक्रिय कदम भी उठाते थे। अपने रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति के लिए उन्होंने पर्याप्त ठोस आधारों पर निम्न पांच संस्थाओं का निर्माण किया:-(१) चरखा संघ, (२) ग्राम-उद्योग संघ, (३) तालीमी संघ (४) हरिजन सेवक संघ और (५) गो-सेवा संघ। निजी देख रेख में शिक्षित किये हुए अपने हजारों सेवाभावी कार्यकर्ताओं को उन्होंने इन संस्थाओं में जमा दिया। इन लोगों ने अपने केन्द्रों के जाल सारे भारतवर्ष में फैला दिये। इस प्रकार गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रयोग केवल साबरमती और सेगांव के आश्रम में ही नहीं, सारे हिन्दुस्तान में सामूहिक रूप से आरम्भ किया। सारे देश में इससे जागृति आई और सारा राष्ट्र

स्वतंत्रता के लिए ही नहीं अपने नव-निर्माण के लिए भी छट-पटाने लगा। नीचे हम उनके प्रमुख रचनात्मक कार्यक्रम के अंगों पर विचार करेंगे :

खादी

भारत में खादी-प्रसार गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का सब से बड़ा अंग है। वह खादी को मुक्तिदाता और चर्खे को स्वराज्य का सबसे बड़ा हथियार कहा करते थे। चरखा उनके "अहिंसक समाज की बुनियादी ईंट" था। "चरखे को वह अपने रचनात्मक कार्यक्रम के सूर्यमंडल में सूर्य का स्थान देते थे तथा अन्य कार्यों को ग्रहों का, जो सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। उन्होंने बताया कि जिस प्रकार भारत के किसान अपने पेट के लिए अनाज पैदा करके स्वाश्रयी बने हुए हैं, उसी तरह से वे अपने खेतों में पैदा की हुई कपास को अपने खाली समय में कातकर कपड़ा तैयार कर सकते हैं और विदेश में जाने वाले करोड़ों रुपयों को बचा सकते हैं। इन्सान की दो ही बड़ी आवश्यकताएं हैं—रोटी और कपड़ा। जब ये उसे स्वतः प्राप्त होगये, तो उसे दूसरे के मुंह की ओर ताकना न पड़ेगा। वह स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बन जायगा। अपने पैरों पर खड़ा रह कर वह गुलामी से छूट सकेगा।"*

खादी के संबंध में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की थी :—

"खादी मुल्क की सारी जनता की आर्थिक आजादी और समानता

* बापू के चरणों में—

के आरम्भ की सूचक है। खादी का अर्थ है सर्वव्यापी स्वदेशी भावना, जीवन की सब आवश्यक वस्तुएं हिन्दुस्तान से ही—और वे भी गांववालों की मेहनत और बुद्धि के उपयोग द्वारा—प्राप्त करने का निश्चय।"

गांधीजी खादी को भारतीयों की एकता, आर्थिक आजादी और समानता का प्रतीक समझते थे। वह चाहते थे कि कपड़े के रूप में हिन्दुस्तान का पैसा चन्द मिल-मालिकों और विदेशी व्यापारियों को न जाय, उसका लाभ किसी एक को या कुछ को न मिले, वरन् वह लाभ सारे हिन्दुस्तानियों को पहुँचे। उससे देशी कपास पैदा करने वाले, चुनने वाले, उसे ओटने वाले, साफ करने वाले, धुनने वाले, पूनी बनाने वाले, कातने वाले, मांडी देने वाले, रंगने वाले, ताना-बाना करने वाले, बुनने वाले, और धोने वाले सब समान रूप से लाभ उठायें और हिन्दुस्तान के ग्रामोद्योग खादी के सहारे से पनप उठें।

अपने इस आदर्श की पूर्ति के लिए गांधीजी ने "चरखा संघ" का निर्माण किया। इसकी शाखा-प्रशाखाओं ने सारे हिन्दुस्तान में फैलकर लाखों लोगों को इस उद्योग में आयोजित किया, उनकी रोजी की समस्या हल की और लाखों आदमियों को खादी का विमल बाना पहनना सिखाया।

खादी गांधी के सैनिकों की वर्दी बनी, वह सेवा सादगी और स्वच्छता की प्रतीक समझी जाने लगी, उसके धागे-धागे पर आजादी का इतिहास लिखा गया और आज जब कपड़े की तंगी

से राशन और कंट्रोल की समस्या उठ खड़ी हुई हैं, खादी आत्मनिर्भरता का पुनः जाग्रत सन्देश बनकर हमारे सामने अपनी सेवाएं लिए हुए उपस्थित हैं।

ग्राम-उद्योग

गांधीजी ने हिन्दुस्तान और उसकी समस्याओं का अध्ययन यहाँ के गाँव-गाँव घूमकर बड़ी बारीकी से किया था। वह यह अच्छी तरह से जान गये थे कि चन्द शहरों की जागृति से हिन्दुस्तान का भला नहीं हो सकता। उसकी कायापलट तो देश के सारे देहात के जागरण से ही संभव है। गांधीजी ने स्वराज्य की लड़ाई भी शहरी आजादी के लिए नहीं लड़ी। वह आजादी का सुख-स्पर्श पहले यहाँ के ७ लाख गांवों के लिए चाहते थे। और गांवों में सुख की लहर वहाँ के उद्योग-धन्धों के विकसित होने से, देहात-सफाई से और वहाँ के लोगों के आरोग्य से ही आ सकती थी। इसलिए इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ग्राम-उद्योग संघ की स्थापना की। इसका उद्देश्य देहाती दस्तकारों को धंधे में लगाना और देहाती दस्तकारियों को पुनर्जीवित करना था।

गांधीजी शहरों और देहात के अंतर को कम कर देना चाहते थे। वह देहाती कारीगरी को शहरी जीवन में खपा देना चाहते थे, जिससे कि देश का करोड़ों-अरबों रुपया विदेशों में न जाकर देहातियों के पास जाय और उनके नव-निर्माण में सहायक हो। वह हर गांव-कस्बे को खाने-पहनने और जीवनोद्योग के सम्बन्ध

में आत्मनिर्भर बना देना चाहते थे। कल-कारखाने पर आदमी जिन्दा रहे, उसके लिए बाजार ढूँढने पर महायुद्धों का सृजन हो, विज्ञान से मानवता की बरबादी हो यह उन्हें अभीष्ट नहीं था। और यह तभी हो सकता था कि जब लोग अपनी आवश्यकता की चीजें खुद तयार करलें, आवश्यकता से अधिक अपने पास संग्रह न करें और प्रत्येक कार्य सेवा-भावना से हो— गांधीजी के ग्राम-उद्योग का यही मूल मंत्र था। उनके कार्यकर्त्ता इसी मूल मंत्र को ले कर गांवों में बैठते थे। वहाँ के जीवन में हिलमिल जाते थे। खुद झाड़ू और फावड़ा उठाकर देहात-सफाई का उपदेश कार्यान्वित करते थे। देहातियों के आरोग्य के लिए अपनी जान की बाजी लगा देते थे। उनमें शिक्षा और सेवा का प्रचार करते थे। उनके उद्योगों को विकसित करते थे। ग्राम-उद्योग का कार्य ग्रामों की कायापलट का कार्यक्रम था।

बुनियादी तालीम

गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति की। बाबू और क्लर्क बनाने वाली अंग्रेजी शिक्षा के वह सख्त खिलाफ थे। विद्या का पहला उद्देश्य वह मुक्ति मानते थे—सा विद्या या विमुक्तये। उन्होंने भारतीयों को सच्ची शिक्षा देने के लिए तालीमी संघ का निर्माण किया। उनकी नई शिक्षा का उद्देश्य शरीर और मन दोनों का समुचित विकास करना था। वह नई शिक्षा के द्वारा बालकों में सच्ची राष्ट्रीयता का उदय करना चाहते थे, उन्हें आदर्श ग्रामवासी और

आदर्श शहरी बनाना चाहते थे और चाहते थे कि लोग केवल शिक्षित ही न हों उनके ज्ञान का विकास इस प्रकार होजाय कि वे अपने पैरों पर स्वयं खड़े हो सकें।

गांधीजी बाल-शिक्षण के साथ-साथ प्रौढ़-शिक्षण पर भी जोर देते थे।

राष्ट्रभाषा

गांधीजी ने देश की एक राष्ट्रभाषा बनाने के लिए भी बड़ा कार्य किया। वह दो बार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हुए। उन्होंने दक्षिण में बड़े व्यापक पैमाने पर राष्ट्रभाषा का प्रचार किया। वह अंग्रेजों को ही नहीं उनकी अंग्रेजी को भी देश से निकाल बाहर करना चाहते थे। उनका कहना था कि इसने हमारी देश भाषाओं को दरिद्र कर दिया है और देश वासियों में इससे मानसिक दासता उत्पन्न हुई है।

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था—

"सारे भारत के आपसी व्यवहार के लिए हमें हिन्दुस्तान के भाषा-समूह में से एक ऐसी भाषा चाहिए जिसे हमारी जनता की बड़ी-से-बड़ी तादाद आज भी जानती और समझती हो और उसे आसानी से सीखा जा सकता हो। यह भाषा निर्विवाद रूप से हिन्दी है। उत्तर भारत के हिन्दू और मुसलमान दोनों इसे बोलते और समझते हैं। जब वह फारसी लिपि में लिखी जाती है तो उर्दू कहलाती है और देवनागरी लिपि में लिखी जाने पर हिन्दी कहलाती है।"

अन्त के दिनों में गांधीजी का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की नीति से मतभेद होगया। उन्होंने राष्ट्रभाषा के हिन्दुस्तानी नाम और रूप पर जोर दिया और दोनों लिपियाँ सीखने की आवश्यकता महसूस करने लगे। पता नहीं गांधीजी आज होते तो उनका क्या मत होता, पर जो भी हो, इतना तो निर्विवाद है कि वह हिन्दी और देवनागरी लिपि की व्यापकता और सर्वश्रेष्ठता को सदैव स्वीकार करते थे।

अस्पृश्यता निवारण

गांधीजी को यदि कोई चीज सबसे अधिक सताती थी तो वह थी इस देश में फैली हुई छुआछूत की बीमारी। उन्होंने अपना समस्त जीवन इस बीमारी को दूर करने में लगाया। वह हरिजनों में रहते। उनके लिए हाथ पसार कर चन्दा मांगते। अपने दस्तखतों से ५) उगाहते और सब हरिजनों के उत्सर्ग में लगा देते।

हरिजनों के स्थायी कल्याण के लिए उन्होंने 'हरिजन सेवक संघ' का निर्माण किया। यहाँ हरिजनों के बालकों को शिक्षा दी जाती है, उन्हें भांति-भांति के उद्योग सिखाये जाते हैं और उनके मन में से हीनता के वे सब भाव जो सदियों से सवर्णों के अन्याय के कारण उनमें जमा होगये हैं, दूर कर दिये जाते हैं।

छूआछूत को गांधीजी हिन्दू धर्म का कोढ़ कहते थे। वह इस प्रथा को धर्म की जड़ें खोदने वाली बताया करते थे। उनकी कट्टरतावादियों को चेतावनी थी कि यदि हरिजनों के साथ

होने वाले अन्यायों का प्रतिकार न किया गया तो हिन्दुओं का नाश होजायगा। एक बार अंग्रेजों ने इन्हें हिन्दुओं से विलग करना चाहा तो गांधीजी ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। वह अपने आपको हरिजन ही नहीं भंगी कहते थे। अस्पृश्यता निवारण के कार्यक्रम के द्वारा उन्होंने सदियों से चली आने वाली छुआ-छूत की कट्टर भावना को आखिर पानी कर ही दिया।

साम्प्रदायिक एकता

साम्प्रदायिक एकता के लिए तो गांधीजी ने अपनी जान ही दे दी। वह हिन्दू और मुसलमान को भाई-भाई समझते थे। उनका कहना था कि मजहब बदल जाने से मुहब्बत नहीं बदलती। देश में अमन और तरक्की के लिए कौमी एकता के महत्व को जितना उन्होंने समझा था, उतना शायद ही किसी ने समझा हो। वह कौमी एकता राजनैतिक कारणों के लिए ही जरूरी नहीं मानते थे। वह देश की कौमी एकता को मानवता के लिए एक मिसाल बना देना चाहते थे। उनके हृदय में हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए समान जगह थी। जब उन्होंने काम शुरू किया तब सन् २१ में हिन्दुस्तान के सारे मुसलमान उनके साथ थे और जब उन्होंने काम समाप्त किया तब सन् ४८ में सारे मुसलमान उनके साथ थे।

इनके अतिरिक्त गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम में आर्थिक समानता, गो-सेवा, किसानों और मजदूरों की उन्नति, विद्यार्थी-

सम्पर्क, नारी-जागरण, शराब-बंदी, कोढ़ियों की सेवा और आदिवासियों का जागरण भी शामिल था।

गांधीजी अपने रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा सारे देश की आजादी और सारे देश की खुशहाली हिन्दुस्तानी तरीके से वापस लाना चाहते थे।

गांधीजी का व्यक्तित्व

अमरीकन पत्रकार लुई फिशर ने गांधीजी के अचरज भरे अनोखे व्यक्तित्व से उत्तेजित होकर सन् ४२ में उनसे एक प्रश्न पूछा था :

आपके पास ताकत का कोई सामान नहीं। न आपके पास राज सत्ता है, न पुलिस है, न संगठित संस्था है (क्योंकि फिशर की राय में कांग्रेस संयमयुक्त संगठित संस्था नहीं थी) फिर क्या कारण है कि आप करोड़ों लोगों पर अपना असर डालने में कामयाब हुए हैं? यहाँ तक कि वे अपना समय, अपना आराम, अपनी जिन्दगी तक [आपके इशारे पर] कुर्बान करने को तय्यार होजाते हैं?"*

यह प्रश्न लुई फिशर जैसे विदेशी पत्रकारों को ही नहीं, देश-विदेश के लाखों व्यक्तियों को बुद्धि को भ्रमित करता रहा है।

आखिर गांधीजी में ऐसा क्या था कि जो लगभग ३५ वर्ष तक देश की राजनीति उनके इशारे पर नाचती रही? करोड़ों ने उनका जयघोष किया, लाखों उनके साथ चले और हजारों उनकी आन पर मिटे!

ऐसा क्या जादू था कि जो उनके पास गया, वह उन्हींका होरहा? उनकी एक आवाज पर महलों के रहने वाले स्वेच्छा से

* गांधीजी के साथ सात दिन—लुई फिशर

दर-दर भटकने लगे, पर्दों में रहने वालीं खुली सड़क पर धरना देने लगीं, जो कभी हाकिमी किया करते थे वे हँस-हँसकर मार खाने लगे और जो दूसरों को जेल भेजा करते थे उनके लिए जेल स्वयं कृष्ण-मन्दिर बन गया ! स्कूल बन्द हुए, कारोबार बन्द हुए, बाजार बन्द हुए—सारा हिन्दुस्तान बागी हो उठा। करोड़ों लोग वशीकरण की एक ही डोरी से बँधे हुए-से, एक ही झंडे के नीचे, उस एक ही की जय पुकारने लगे— —महात्मा गांधी की जय !

महात्मा गांधी की जय—मानो यह परतन्त्र भारत के लिए मृत-संजीवनी औषधि थी, जो जिसके गले उतरी उसमें नव-जीवन ला दिया।

आज विचार करने पर गांधीजी के कृत्य मनुष्य की सामर्थ्य से परे जान पड़ते हैं और कल शायद लोग उन पर विश्वास भी न करें, पर आज के लोगों ने पिछले कल की सचाई को आँखों से देखा है कि अकेला डेढ़ पाव हड्डी का छोटा-सा गांधी देवताओं की भी सामर्थ्य को लांघ गया था।

वास्तव में गांधीजी का व्यक्तित्व ऐसा ही अनुपम और विराट था।

उनका व्यक्तित्व गंगा की तरह निर्मल, हिमालय की तरह उदात्त और सूर्य की तरह प्रकाशमान था।

उनका व्यक्तित्व पारे की तरह ठोस, हीरे की तरह सघन और वज्र की तरह कठोर था।

उनका व्यक्तित्व पुष्प की तरह कोमल, बालकों की तरह सरल और जल की तरह तरल था।

उनके व्यक्तित्व में राम जैसी मर्यादा, भीष्म जैसी दृढ़ता, युधिष्ठिर जैसी सत्यनिष्ठता, कृष्ण जैसी पूर्णता, बुद्ध जैसी पर-दुःख-कातरता और महावीर स्वामी जैसी जीवदया कूट-कूट कर भरी हुई थी।

गांधीजी के व्यक्तित्व का निर्माण संयम-जनित तेजस्विता और प्रखर राष्ट्रीयता से हुआ था। सबसे ऊपर उनका निर्मल चरित्र उनके महान् व्यक्तित्व की आधार-शिला था।

दुनिया उसीके पीछे चलती है जो उसका सुधरा हुआ संस्करण होता है। दुनिया उसीकी सुनती है जो उसके अंतर की वाणी को सुन और सुना सकने में समर्थ होता है। दुनिया उसी के पीछे जान देती है जो उस पर अपनी जान निछावर करने को तैयार रहता है। दुनिया उसीकी जय बोलती है जो दुनिया की जय चाहता है, उसका मंगल मनाता है।

हिन्दुस्तान गांधीजी के पीछे इसीलिए चला कि वह हिन्दुस्थान के प्रतीक थे। उनका व्यक्तित्व हिन्दुस्तान का, हिन्दी-संस्कृति का और हिन्दू-धर्म का सच्चा प्रतिनिधित्व करता था।

सचाई, सादगी, स्वतंत्रता और सेवा-भावना से गढ़े हुए उनके अलौकिक व्यक्तित्व की गहराई की कोई थाह नहीं। विविध प्रवृत्तियों में बंटे हुए उनके कर्म-संकुल जीवन की बारीकियों की कोई विवेचना नहीं। विवेचना और विश्लेषण तो उस

व्यक्तित्व का हो जिसमें अहं हो और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व हों। लेकिन जिस संत ने जन-सेवा के लिए अपना आपा ही खो दिया हो, जिसमें मिथ्याचार ढूंढ़ने से भी न मिले और जो दुनिया में रहते हुए भी दुनियादारी से कोसों दूर हो, उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण तो वही कर सके जो उन जैसा हो।

तो भी उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली कुछ आधारभूत बातों की चर्चा की जा सकती है। वही हम संक्षेप में करेंगेः—

त्याग

गांधीजी ने अपने आदर्शों का आरम्भ स्वयं अपने से किया। जनता को देश के लिए सब कुछ त्याग देने का उपदेश देने से पहले उन्होंने अपनी दक्षिण अफ्रीका की कमाई का सार्वजनिक कार्यों के उपयोग के लिए एक ट्रस्ट बना दिया। यहाँ पोरबन्दर और राजकोट में जो पैतृक सम्पत्ति थी, उस पर से न केवल अपना ही दावा हटा लिया, वरन् उस त्यागपत्र पर अपने चारों पुत्रों के भी हस्ताक्षर करा दिये। अपनी वृद्धा बहन और उसकी विधवा लड़की के गुजारे के लिए भी गांधीजी के पास कुछ न था। वे देश की करोड़ों अन्य असहाय विधवाओं की ही भांति पीस-कूटकर जीवन-निर्वाह करती थीं।

कर्मयोग

निरन्तर कर्म ही गांधीजी का जीवन था और वही उनकी शक्ति थी। उन्होंने २२-२२ घंटे लगातार देश के लिए काम किया

था। उनके काम का सिलसिला भोजन करने और टहलने में ही नहीं, रेलगाड़ियों के थर्ड क्लास के सफर में भी नहीं टूटता था। सफर में वह हरिजनों के लिए चन्दा ही नहीं मांगते, 'हरिजन-सेवक' के लिए लेख भी लिखते थे, पत्रों का जवाब भी देते थे। लगातार १०-१२ घंटे की लिखाई से जब बुढ़ापे में दाहिना हाथ काम नहीं देता तो वह बांये से काम करना शुरू कर देते थे। फिर केवल लिखना, पढ़ना, भाषण देना, मुलाकातें करना, वाद-विवादों में भाग लेना, शंका-समाधान करना, दौरा करना ही उनके काम न थे, वह आश्रम में अपने हिस्से का आटा भी पीसते थे। अपने हिस्से का पानी स्वय भरते थे। शाक काटते थे। बीमारों की तीमारदारी करते थे। दक्षिण अफ्रीका में तो जब वह अपना अखबार निकालते थे, तो न केवल उसके लिए लिखते ही थे, स्वयं कंपोज भी करते थे और वक्त पड़ने पर ही नहीं अपनी बारी पर मशीन का डंडा भी खुद घुमाते थे। मिथ्याचार और बाहरी दिखावा उनमें नाम को भी नहीं था। वह अपना सब काम अपने हाथों से करते थे। शिमला-कान्फ्रेंस के समय उन्होंने अपना निजी मन्त्रि-मण्डल एकदम तोड़ दिया था और एक ओर तो वह ऊंची राजनीतिक बहसों में भाग लेते थे और दूसरी ओर अकेले १० आदमियों के काम को सम्हालते थे। कठिनाइयों से बिना घबराये कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ता से चले जाना उनका अन्तिम लक्ष्य था। नोआखाली में जहाँ गुण्डों का राज्य था, वह अकेले, नंगे पांव, गांव-गांव घूमे थे। कोई एक बात हो तो कही जाय। प्राचीन महर्षियों की

भांति गांधीजी का व्यक्तित्व, लोक-सेवा की अखण्ड तपश्चर्या से निर्मित हुआ था। इसीलिए ही उसमें प्रदीप्त तेजस्विता थी, इसीलिए ही उनका जीवन प्रेरणामय था और इसीलिए ही वह स्वयं काम करके लाखों से मनचाहा काम करा सकते थे।

चरित्र-बल

चरित्र-बल गांधीजी की सबसे बड़ी पूंजी थी। उन्होंने अपने समस्त विकारों पर काबू पा लिया था। जीवन की समस्त इच्छाएं—और-तो-और भूख तथा नींद तक भी—उनके वश में थीं। उनकी निजी आवश्यकताएं सीमित-से-सीमिततम थीं। वह भी इसलिए कि लोग समझते थे कि स्वराज्य गांधीजी के पेट में है, जब तक वह हाथ में न आ जाय, गांधीजी अपने शरीर की हिफ़ाजत करना चाहते थे। वह अपने ही चरित्र-बल पर नहीं, अपने समस्त साथियों के चरित्र-बल पर भी निगाह रखते थे। उनके चरित्र में त्रुटि देख पड़ने पर खुद उसका भीषण-से-भीषण प्रायश्चित करते थे। उन्होंने राजनीति में भी चरित्र-बल को शीर्ष-स्थान दिया था। अहिंसा जब अपनाई तो कूटनीति की तरह नहीं, व्यवहारनीति की तरह ही अपनाई। असहयोग में जो मामूली-सी हिंसा होगई तो आन्दोलन ही बन्द कर दिया। गांधीजी के राजनैतिक-चारित्र्य की इससे बढ़कर दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती कि सन् २१ के आन्दोलन में अंग्रेजों ने गांधीजी से सन्धि करनी चाही और वे उस समय ही स्वराज्य देने को तय्यार थे, पर गांधीजी ने उसको स्वीकार नहीं किया। क्योंकि अंग्रेज चाहते थे कि गांधीजी खिलाफत के सवाल को

छोड़दें। लेकिन उन्होंने कहा कि मुसलमान इस देश के अंग हैं, उनके प्रश्न को नहीं छोड़ा जा सकता।

इसी चरित्र-बल की श्रेष्ठता के कारण ही विरोधी तक उनका आदर करते थे। भारतीयों से अधिक अंग्रेजों की निगाह में उनकी इज्जत थी। लोकमान्य तिलक का उदाहरण इस सम्बन्ध में आदर्श है। उन्होंने एक बार कहा था—

"यह आदमी हमारा नहीं है, इसका मार्ग भिन्न है, लेकिन है यह पूरा-पूरा सच्चा। इसके हाथों हिन्दुस्तान का कभी भी अश्रेय नहीं होगा। हमें इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं भी इसके साथ हमारा विरोध न हो। जहां तक हो सके हमें इसकी मदद ही करनी चाहिए।"❀

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस से आपका मत-विरोध रहा, पर गांधीजी ने उनकी ज्वलंत देशभक्ति को कभी कम करके नहीं देखा और इसीका यह परिणाम हुआ कि वह जीवन-भर गांधीजी के भक्त बने रहे और उन्हें अपना राजनैतिक गुरु मानते रहे। वर्मा में उनके नाम की ब्रिगेडें कायम कीं और गांधी-जयन्ती मनाते रहे।

गांधीजी में विरोधियों को वश में करने की अपूर्व शक्ति थी। भारत के वायसराय उनसे इसीलिए मिलते हिचकिचाते थे कि कहीं गांधी का जादू उन पर काम न कर जाय। इस सब का कारण यह था कि गांधीजी किसी का अहित नहीं चाहते थे, उनका उद्देश्य पवित्र था और उनका व्यक्तिगत चरित्र इस

❀ बापू की झांकियां—कालेलकर

ऊंचाई पर था कि मनुष्य का मस्तिष्क बरबस उनके चरणों पर झुक जाता था।

गांधीजी रुपये-पैसे के मामले में भी बड़े हिसाब-किताब से काम लेते थे। पाई-पाई का हिसाब रखना और लेना उनकी आदत थी। जो रद्दी के लिफाफों पर चिट्ठी लिखे, आलपीनों और धागों तक को सम्हाल कर रखे, छिलकों तक के उपयोग को लालायित रहे, उससे फजूलखर्ची तो हो ही कैसे सकती थी? हाँ, मितव्ययिता की अनेक मिसालें उन्होंने अवश्य कायम की हैं।

गांधीजी के इसी अर्थ-चारित्र्य के कारण रुपया उनके चरणों में खिंचा चला आता था। काम के लिए उन्हें कभी पैसे की तंगी नहीं हुई। गांधीजी का कोई काम निकला, कोई मांग आई, रुपया उनके पास पेशगी पहुंचता था। लेकिन रुपये की प्राप्ति के मामले में भी वह चरित्र को प्राथमिकता देते थे। शुभ कार्यों के लिए शुभ साधनों से ही वह पैसा प्राप्त करना चाहते थे। तिलक-फंड के लिए जब नाटक कंपनियों से चन्दा वसूल करने की बात आई तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया।

इस प्रकार गांधीजी ने अपने जीवन में व्यक्तिगत, राजनैतिक और आर्थिक चरित्र-बल पर जोर दिया और दुनिया में सदाचार का एक ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित कर गये।

नेतृत्व की कुञ्जी

गांधीजी जन्मजात नेता नहीं थे। उनमें तिलक, नेताजी और नेहरू-पटेल जैसी युवकों को भावाभिभूत कर लेने वाली उष्मा

नहीं थी। उनमें मालवीय और लाला लाजपतराय जैसी मोहाविष्ट कर लेने वाली भाषण-शक्ति भी नहीं थी। फिर भी वह महान् नेता थे और करोड़ों के हृदयों पर शासन करते थे।

दुबले-पतले व्यक्तित्व-विहीन अनगढ़ गांधीजी की सफलता और नेतृत्व की कुंजी उनकी नैतिक शक्ति में निहित थी। वह अपने विचार और कर्मों को उस नैतिक धरातल पर पहुँचा देते थे कि जहाँ उसके तर्कपूर्ण विरोध की गुंजाइश नहीं रहती थी। वह अपनी वाणी और कर्म से मनुष्य की सद्वृत्तियों को झनझनाते थे। वह सीधे, बिना झिझके बुराई पर चोट करते थे, और क्योंकि उस हमले में उनका अपना या किसी वर्ग विशेष का निजी स्वार्थ नहीं रहता था, इसलिए दुनिया की सहानुभूति उन्हें सहज ही प्राप्त होजाती थी।

गांधीजी का नेतृत्व अन्धा नहीं था। वह मनुष्य को भेड़ बनाकर उस पर शासन नहीं करते थे। हिन्दुस्तान के भेड़ बने हुए मनुष्यों को पहले उन्होंने मनुष्य बनाया और फिर उनसे कहा—देखो, यह रास्ता है, विवेकपूर्ण रीति से इसे स्वीकार कर सकते हो तो, आओ, साथ चलो!

गांधीजी के नेतृत्व में छल, कपट, मिथ्याभिमान या गलतियों को स्वीकार न करने की बात नहीं थी। लुई फिशर ने एक स्थान पर लिखा है :—

"उनका दिमाग तरल और नरम है। जब वह कुछ करने पर उतरते हैं तो डिक्टेटर के समान होते हैं। अपने तर्क के जोर से और अपने साथियों की मदद से वह सारे विरोध को कुचल डालते हैं। मगर

उनके सोचने का तरीका डिक्टेटरों जैसा नहीं है। क्योंकि डिक्टेटर कभी अपनी भूल नहीं मानते। मगर गांधीजी अपनी भूल मान सकते हैं और अक्सर मान लेते हैं।'※

गांधीजी के विशाल व्यक्तित्व के और उनके प्रति भारतीय जनता के प्रबल आकर्षण का कारण भारतीय जनता के लिए किये गये बड़े-बड़े काम और बड़ी-बड़ी राजनीतिक सफलताएं नहीं थीं—इसका कारण यह था कि गांधीजी जितना ध्यान बड़ी-से-बड़ी बातों पर देते थे उससे कहीं ध्यान छोटी-से-छोटी बातों का रखा करते थे। काम चम्पारन के किसानों में कर रहे थे लेकिन अहमदाबाद के आश्रम में बने हुए पाखानों का ध्यान नहीं भूले थे कि अब पूर्वी हवा चलने वाली है पाखानों का स्थान बदल देना चाहिए। बड़ी-से-बड़ी राजनैतिक उलझनों में पड़े रहने पर भी उन्हें छोटे-से-छोटे कार्यकर्त्ता का ध्यान रहता था। वह सबकी खोज-खबर रखते थे। कौन कहाँ है, क्या कर रहा है, कौन बीमार है, किसके शादी है, किसके बच्चा हुआ है, कौन किस संकट में है—इसका गांधीजी को सदैव ख्याल रहता था और वह हजार काम छोड़कर इन बातों की देख-रेख के लिए समय निकाल लेते थे।

गांधीजी को जिस तरह देश के सार्वजनिक और राजनैतिक कार्यों की जटिल समस्याएं हल करनी पड़ती थीं, उसी तरह उनको अपने सैंकड़ों मित्रों और हजारों कार्यकर्त्ताओं की घरेलू

※ गांधीजी के साथ सात दिन

समस्या भी हल करनी पड़ती थी। देश के एक-दो नहीं हजारों व्यक्ति अपने निजी और कौटुम्बिक मामलों में अपने बापू पर निर्भर रहते थे और बापू भी हजार जरूरी काम छोड़कर इन चीजों के लिए अपना कीमती समय निकाल लेते थे। उनके प्रयत्नों से सैंकड़ों दुर्घटनाएं रुकी हैं, सैंकड़ों परिवार विनष्ट होने से बच गये हैं और हजारों व्यक्तियों का जीवन सुपथ पर आगया है। गांधीजी के व्यक्तित्व की इस दुर्लभ विशेषता का मूल्य उनकी राजनैतिक सफलताओं से सचमुच कई गुना बड़ा है।

गांधीजी के परिचय में जो भी आता, वह उनका अपना हो जाता। कुछ ही मिनटों के परिचय में वह उसके श्रद्धाभाजन हो उठते। गांधीजी से उम्र में बूढ़े-बूढ़े भी उन्हें बापू कहा करते थे। सारे राष्ट्र के प्रति गांधीजी में वात्सल्य भाव था। वह माता की तरह इस देश के बच्चों की हित-चिन्ता में व्यग्र थे। जैसे बन-गाय अपने बछड़े की रक्षा के लिए शेर के सामने सींग अड़ाकर खड़ी होजाती है, ऐसे ही वह स्वदेश-मुक्ति के लिए ब्रिटिश शेर के सम्मुख लकुटिया लेकर खड़े होगये थे। यही निजता उनके व्यक्तित्व का आधार थी, यही दृढ़ता उनके नेतृत्व की कुञ्जी थी।

स्वभाव और आदतें

किसी भी महापुरुष के व्यक्तित्व का पता उसमें पाई जाने वाली आदतों से लगता है। गांधीजी को तेज चाल चलने की आदत थी। वह सीधे तन कर बैठते थे। बिना सहारे लिखते थे। आत्मा की तरह बाह्य सफाई पर भी जोर देते थे। उनके

आस-पास का वातावरण सफाई और सुघराई से दमकता रहता था। सौन्दर्य और कला की उनकी अपनी परिभाषा थी। वह इन दोनों चीजों को उपयोगिता की दृष्टि से आंकते थे। उन्होंने अपने लिए ऐसी जीवन-कला का निर्माण किया था जो सार्थक और जीवनी शक्ति से ओतप्रोत थी। वह हरेक काम को खूबी और बारीकी के साथ करना पसन्द करते थे। जो लिखते उसे दोबारा देखकर आगे जाने देते थे। जो बोलते उसे समझकर बोलते थे। वह आगे कदम तोलकर रखते थे। वह सदैव कृत्रिमता से दूर रहे। जीवन-भर मुक्त हास्य उनके चेहरे पर फूटता रहा। स्वभाषा के वह बड़े हिमायती थे। स्वदेशी उनका जीवन-प्राण थी। सत्य उनकी जन्मघुट्टी में था। अहिंसा उनकी जीवन-संगिनी थी। सारा हिन्दुस्तान उनका अपना घर था। विश्व उनका अपना कुटुम्ब था। तीन बन्दर उनके गुरु थे—एक इनमें से असत्य नहीं बोलता था, एक असत्य नहीं सुनता था और एक असत्य नहीं देखता था। गांधीजी का जीवन प्रार्थनामय था। चन्द टरै, सूरज टरै— प्रार्थना का समय नहीं टलता था। वक्त की पाबन्दी कोई गांधीजी से सीखे। जिस समय जहां जाना होता, वहां चल देते थे, फिर चाहे सवारी मिले या न मिले। रास्ते में मोटर और साइकिल तक पकड़कर वह नियत समय पर गन्तव्य स्थान पर पहुँचे थे। सेवा-भावना तो उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। कोढ़ी-परिचर्या तक उन्होंने की थी। एक बार तो जेल में एक सिद्दी कैदी के बिच्छू से काट लेने पर उन्होंने मुँह से उसका जहर चूस लिया था। अफ्रीका में एक मुसलमान

को रोज चार मील चलकर मुफ्त अंग्रेजी पढ़ाने जाया करते थे।

निर्भयता और क्षमा-भावना

निर्भयता और क्षमा-भावना गांधीजी के स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता थी। दक्षिण अफ्रीका में पठानों ने उन पर हमला किया, परन्तु इस हमले से न वह झिझके, न डरे, न अपने रास्ते से ही विचलित हुए। पठानों पर मुकद्दमा ही नहीं चलाया, उन्हें उलटा क्षमा कर दिया। जब वहाँ गोरे जान के दुश्मन बने तो भी वह विचलित नहीं हुए। अपनी सुरक्षा के लिए भी उन्होंने कोई प्रबंध नहीं किया और सबसे बड़ी बात यह कि गोरों के प्रति उनके मन में तनिक भी मैल नहीं आया। चम्पारन के किसानों ने जब उन्हें मार डालने को हत्यारे तनात किये तो एक दिन अकेले ही वह उनके यहाँ पहुँच गये कि लो, मैं आगया। एक बार आश्रम में उनकी पीठ पर सांप चढ़ गया और कंधों पर चढ़कर लहराने लगा। लेकिन गांधीजी विचलित नहीं हुए और सांप को नहीं मारने दिया। मृत्यु से कुछ दिन पहले जब उन पर बम फैंका गया तो उन्होंने कहा कि अपराधी को क्षमा कर दिया जाय। दंगाइयों का आभास पाकर पुलिस ने उनकी प्रार्थना-सभा में सुरक्षा का प्रबन्ध कड़ा करना चाहा, पर उन्होंने नहीं करने दिया। अपने हत्यारे को भी अगर वह जरा भी होश में होते तो अवश्य ही क्षमा करने को कह जाते।

भारत की प्रतिमूर्त्ति

वास्तव में गांधीजी भारत की प्रतिमूर्त्ति थे। इस देश की

पवित्र रज से ही उनके निर्मल व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था। युगों-युगों से चली आई भारत की पुनीत संस्कृति ही उनके व्यक्तित्व में पल्लवित हुई थी। नेहरूजी का यह कथन बिलकुल सच है कि "गांधीजी भारत का प्रतिनिधित्व एक आश्चर्यजनक सीमा तक करने लगे थे। वह इस पुरातन और संतप्त भूमि की अन्तरात्मा की आवाज बन गये थे। एक प्रकार से वह स्वयं भारत थे।"

गांधीजी के उपवास

गांधीजी दुनिया के अनोखे क्रांतिकारी थे। कार्ल मार्क्स की तरह उन्होंने जगत को नवीन जीवन-दृष्टि प्रदान की और लेनिन की तरह करोड़ों मानवों का परतन्त्रता से उद्धार करके एक महान् राष्ट्र की नींव डाल गये। लेकिन इस महान् कार्य के लिए न उन्होंने सेनाएं खड़ी कीं और न प्रतिपक्षी के विरुद्ध किसी प्रकार की घृणा का ही संचार होने दिया। उन्होंने सदैव साध्य से अधिक साधनों की निर्मलता पर बल दिया। वह सदैव अपने सहयोगियों को सत्य और सहिष्णुता का संदेश देते रहे। जहाँ उन्हें स्वप्न में भी साधनों में बिकार की झलक मिली, वह उस बुराई का समूल नाश करने को उद्यत होगये।

उन्होंने अपने आपको राष्ट्र से कभी विलग करके नहीं देखा। देश की बुराई को वह अपनी बुराई समझते थे और बजाय इसके कि वह उसके लिए किसी और को दंड देते वह अहिंसक युद्ध के सच्चे सेनपति की तरह स्वयं ही उसके लिए प्रायश्चित्त करते थे। दोषी को दंड देने और अपनी सत्य बात को सिद्ध करने का उनका तरीका ही निराला था। भगवान् कृष्ण के सुदर्शन की तरह अनशन उनका अमोघ अस्त्र था। ब्रिटिश सरकार लाखों मनुष्यों के आन्दोलन से इतना नहीं घबराती थी, जितना कि अकेले गांधीजी के अनशन से उसका

आसन डोल जाता था। यही हाल भारतीय जनता का था। उसने अंग्रेजी दमन और आर्डिनेंसों की कभी पर्वाह नहीं की, पर जब गांधीजी उसकी किसी बुराई को लेकर प्राणों की बाजी लगा देते थे, जनता के प्राण कंठ में आजाते थे। विदेशी पत्र-कार और राजनीतिज्ञ उनके उपवासों को राजनैतिक दाव-पेच कहा करते थे, मगर गांधीजी ने सदैव अपने उपवासों को "सत्य की शोध" कहा। उपवास उनके लिए आत्म-परिष्कार का काम देते थे और हर उपवास के बाद जैसे अग्नि में तप कर सोना कुन्दन होकर निकलता है, वह दूने चमत्कृत हो उठते थे। उपवास के दिनों में वह सदैव अपने को सत्य (ईश्वर) के निकट अनुभव करते थे और उन्होंने अपने समस्त उपवास ईश्वरीय प्रेरणा से प्रारंभ किये थे। इन उपवासों के कारणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने एक बार कहा था—

"सेहत सुधारने के लिए लोग सेहत के कानूनों के मुताबिक उपवास करते हैं। जब कभी कुछ दोष होजाता है और इन्सान अपनी गलती महसूस करता है, तब प्रायश्चित के रूप में भी उपवास किया जाता है। इन [दोनों प्रकार के] उपवासों में उपवास करने वाले को अहिंसा में विश्वास करने की जरूरत नहीं। मगर ऐसा मौका भी आता है, जहाँ अहिंसा का पुजारी समाज के किसी अन्याय के सामने विरोध प्रकट करने के लिए उपवास करने पर मजबूर होजाता है। वह ऐसा तब ही करता है जब अहिंसा के पुजारी की हैसियत से उसके सामने दूसरा कोई रास्ता खुला नहीं रहता।"

गांधीजी के अधिकांश उपवास, जैसा कि ऊपर उन्होंने कहा, अन्यायों के प्रदर्शन और सत्य की स्थापना के लिए ही हुए। वे सब अहिंसामय थे। उन्होंने अपने और दूसरों के लिए प्रायश्चित्त स्वरूप भी कुछ उपवास रखे, पर कभी भी उनसे अहिंसा विलग नहीं हुई। यह एक ध्रुव सत्य है कि गांधीजी के इस सात्विक उपवासों के क्रांतिकारी प्रभाव के कारण ही भारत की राजनीति गांधीजी के जीते-जी अन्त तक निर्मल बनी रही।

गांधीजी ने कुल मिलाकर १७ बार उपवास किये। इनमें २ दिन से लेकर २१ दिन तक के उपवास सम्मिलित हैं। गांधीजी ने अपने जीवन में कुल मिलाकर ३५०५ घंटों का उपवास रखा। या यों कहें कि वह अपने महान् जीवन में ४ महीने, २६ दिन और एक घंटा पूर्ण उपवास व्रत में दीक्षित रहे। इसके अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने लगातार ४॥ महीने तक का एक अर्ध उपवास भी रखा था।

गांधीजी के इन १७ पवित्र उपवासों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

पहला उपवास १९१३ में, दक्षिण अफ्रीका में ७ दिन का रखा गया। यह फिनिक्स आश्रम के दो व्यक्तियों के पतन के परिणामस्वरूप प्रायश्चित्त में रखा गया था। तभी उन्होंने ४॥ मास का नियताहार व्रत धारण किया था।

दूसरा उपवास भी १९१४ में दक्षिणी अफ्रीका में ही रखा गया। यह १५ दिन तक चला और उसी फिनिक्स आश्रम के

एक व्यक्ति द्वारा जान-बूझकर धोखा देने और मिथ्याचार करने के कारण प्रायश्चित्तस्वरूप रखा गया।

तीसरा उपवास अहमदाबाद के मजदूरों और मिल-मालिकों में संघर्ष होजाने के परिणामस्वरूप फरवरी, १९१८ में किया गया और ३ दिन तक चला। अन्त में दोनों पक्षों में समझौता होगया।

चौथा उपवास रौलट एक्ट के आन्दोलन के दिनों की याद-गार है। उन दिनों दंगा होजाने के कारण गांधीजी ने १३ अप्रेल १९१९ से ७ दिन का उपवास रखा था।

पांचवां उपवास प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर बंबई में सहयोगियों और असहयोगियों के बीच दंगा होजाने के फलस्वरूप रखा गया था। यह चार दिन तक चला।

छठा उपवास असहयोग आन्दोलन के समय चौराचौरी कांड की हिंसा से दुःखी होकर किया गया था। यह पांच दिन तक चला।

सातवां उपवास १७ सितंबर, १९२४ में दिल्ली में प्रथम बार २१ दिन का रखा गया। यह उपवास देश के हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य से दुःखी होकर प्रायश्चित्त और प्रार्थना के रूप में किया गया था।

आठवां उपवास साबरमती-आश्रम के निवासियों में कुछ

दोष आजाने के फलस्वरूप, उनके प्रायश्चित्त के लिए किया गया। यह उपवास ७ दिन का था।

नवां उपवास यरवदा जेल में रखा गया। वहां अप्पा साहब पटवर्द्धन ने भंगी का काम मांगा था, पर अधिकारियों ने नहीं दिया। गांधीजी ने उनकी सहानुभूति में २ दिन का उपवास रखा।

दसवां उपवास बड़ा ऐतिहासिक और आमरण था। यह भी यरवदा जेल में किया गया और आठ दिन तक चला। ब्रिटिश सरकार द्वारा दलित वर्ग को पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिये जाने के फलस्वरूप २१ सितम्बर, १९३२ को यह उपवास रखा गया। गांधीजी के उपवास से सरकार हिल गई और उसे अपना निर्णय वापस लेना पड़ा।

ग्यारहवां उपवास भी १९३३ में ८ मई को यरवदा जेल में रखा गया। यह हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध में साथियों की आत्मशुद्धि के लिए किया गया। यह २१ दिन का भयंकर उपवास था। उपवास आरंभ करते ही गांधीजी जेल से छोड़ दिये गये। बाकी उपवास पूना की पर्णकुटी में पूरा किया गया।

बारहवां उपवास भी यरवदा जेल में १६ अगस्त, १९३३ को किया गया। यह हरिजन-आन्दोलन की सुविधा न मिलने के कारण किया गया था। ७ दिन बाद गांधीजी जेल से छोड़ दिये गये।

तेरहवां उपवास ७ अगस्त, १९३४ को हरिजन यात्रा के सिलसिले में अजमेर की एक सभा में उपद्रव होजाने के फलस्वरूप सेवाग्राम में किया गया और ७ दिन चला।

चौदहवां उपवास ३ मार्च, १९३९ को राजकोट-प्रकरण के सिलसिले में हुआ जो वायसराय के आश्वासन देने पर ४ दिन बाद छोड़ दिया गया।

पंद्रहवां उपवास १९४३ में १० फरवरी को आगा खां महल में "सर्वोच्च अदालत से न्याय की अपील" के रूप में किया गया यह २१ दिन तक चला और इसमें उनकी अवस्था एक बार बड़ी नाजुक होगई।

सोलहवां उपवास २ सितम्बर, १९४७ को कलकत्ते में बंगाल में फैले हुए साम्प्रदायिक झगड़ों को शान्त करने के लिए किया गया। यह ७३ घंटे चला और इसने जादू की तरह बंगाल के उपद्रवों को शान्त कर दिया।

सत्रहवां उपवास दिल्ली में रखा गया था। भारत, विशेषकर दिल्ली की साम्प्रदायिक एकता के लिए गांधीजी का यह अन्तिम उपवास १३ जनवरी, १९४७ को प्रारंभ हुआ और ५ दिन चला। २० जनवरी को उन पर बम फेंका गया, ३० जनवरी को वह शहीद होगये और इस तरह उपवासों की यह सात्विक परम्परा सदा के लिए विलुप्त होगई।

गांधीजी की संध्या-प्रार्थना

बौद्ध मंत्र

नम्यो हो रेंगे क्यो ।

सत् धर्म के प्रवर्त्तक भगवान् बुद्ध को नमस्कार करता हूँ ।

उपनिषद् मंत्र

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

इस जगत् में जो कुछ भी जीवन है वह सब ईश्वर का बसाया हुआ है । इसलिए तू ईश्वर के नाम से त्याग कर के यथाप्राप्त भोग किया कर, किसीके धन की वासना न कर ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और पवन दिव्य स्तोत्रों से जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेद का गान करने वाले मुनि अंग, पद, क्रम और उपनिषद् सहित वेदों से जिसका स्तवन करते हैं, योगी लोग ध्यानस्थ होकर ब्रह्ममय मन द्वारा जिसका दर्शन करते हैं और सुर तथा असुर जिसकी महिमा का पार नहीं पाते, मैं उस परमात्मा को नमस्कार करता हूँ ।

गीता : अध्याय २

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत् किम् ॥

हे केशव ! स्थितप्रज्ञ अथवा समाधिस्थ के क्या लक्षण होते हैं ? स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता, बैठता और चलता है ?

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

हे पार्थ ! जब मनुष्य मन में उठती हुई सभी कामनाओं का त्याग कर देता है और आत्मा द्वारा ही आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दुःख से जो दुखी न हो, सुख की इच्छा न रखे, और राग, भय और क्रोध से रहित हो, वह स्थिर-बुद्धि मुनि कहलाता है ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

सर्वत्र राग-रहित होकर जो पुरुष शुभ या अशुभ की प्राप्ति में न हर्षित होता है, न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

कछुआ जैसे सब ओर से अंग समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हुई कही जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

देहधारी जब निराहार रहता है तब उसके विषय मन्द पड़ जाते हैं, परन्तु रस नहीं जाता। वह रस तो ईश्वर का साक्षात्कार होने से ही शांत होता है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मन ॥

हे कौन्तेय ! चतुर पुरुष के उद्योग करते रहने पर भी इन्द्रियां ऐसी प्रमथनशील हैं कि वे उसके मन को भी बलात्कार से हर लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

इन सब इन्द्रियों को वश में रख कर योगी को मुझमें तन्मय हो रहना चाहिए; क्योंकि अपनी इन्द्रियां जिसके वश में हैं उसकी बुद्धि स्थिर है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष को उनमें आसक्ति

उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामना होती है और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रान्त हो जाती है, स्मृति भ्रान्त होने से ज्ञान का नाश होजाता है और जिसका ज्ञान नष्ट होगया वह मृतक तुल्य है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

परन्तु जिसका मन अपने अधिकार में है और जिसकी इन्द्रियां रागद्वेष-रहित होकर उसके वश में रहती हैं, वह मनुष्य इन्द्रियों का व्यापार चलाते हुए भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

चित्त प्रसन्न रहने से उसके सब दुःख दूर होजाते हैं। जिसे प्रसन्नता प्राप्त होजाती है, उसकी बुद्धि तुरन्त ही स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं। जिसे विवेक नहीं, उसे भक्ति नहीं। और जिसे भक्ति नहीं, उसे शान्ति नहीं है।

और जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ सुख कहाँ से हो ?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

विषयों में भटकने वाली इन्द्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है उसका मन, जैसे वायु नौका को जल में खींच लेजाता है वैसे ही, उसकी बुद्धि को जहाँ चाहे वहाँ खींच ले जाता है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

इसलिए हे महाबाहो ! जिसकी इन्द्रियाँ चारों ओर के विषयों से निकलकर अपने वश में आजाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होजाती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

जब सब प्राणी सोते रहते हैं, तब संयमी जागता रहता है। जब लोग जागते रहते हैं, तब ज्ञानवान् मुनि सोता रहता है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

नदियों के प्रवेश से भरते रहने पर भी जैसे समुद्र अचल रहता है, वैसे ही जिस मनुष्य में संसार के भोग शान्त होजाते हैं, वही शान्ति प्राप्त करता है, न कि कामना वाला मनुष्य।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।

सब कामनाओं का त्याग करके जो पुरुष इच्छा, ममता और अहंकार-रहित होकर विचरता है वही शान्ति पाता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।

हे पार्थ ! ईश्वर को पहचानने वाले की स्थिति ऐसी होती है। उसे पाने पर फिर वह मोह के वश नहीं होता और यदि मृत्यु-काल में भी ऐसी ही स्थिति टिकी रहे, तो वह ब्रह्मनिर्वाण पाता है।

एकादश व्रत

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह ।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ।।
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना ।
ही एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रतनिश्चये ।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, सब जगह भय का त्याग, सब धर्मों के साथ समान-भाव, स्वदेशी धर्म का पालन, स्पर्शास्पर्श भावना का त्याग— इन ग्यारह व्रतों को पालन करने का नम्रतापूर्वक निश्चय करता हूँ।

कुरान की आयत

अऊजु बिल्लाहि मिनश् शैत्वानिर् रज़ीम् ।
बिस्मिल्लाहिर् रह्मानिर् रहीम् ।।
अल् हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन् ।
अर् रह्मानिर् रहीमि मालिकि यौमिद् दीन् ।
ईयाक नअबुदु व ईयाक नस्तईन् ।
इह्दिनस् सिरात्वल् मुस्तकीम् ।
सिरात्वल् लज़ीन अन्अम्त अलै हिम् ।
गैरिल् मग् दूबि अलै हिम् व लद् द्वॉल्लीन् ।

मैं पापात्मा शैतान के हाथों से (अपने को) बचाने के लिए परमात्मा की शरण लेता हूँ । हे प्रभो ! तुम्हारे नाम का ही स्मरण करके मैं सारे कामों का आरम्भ करता हूँ । तुम दया के सागर हो, तुम कृपामय हो । तुम अखिल विश्व के पालनहार हो । तुम ही मालिक हो । मैं तुम्हारी ही मदद मांगता हूँ । आखिरी न्याय देने वाले तुम ही हो । तुम मुझे सीधा ही रास्ता दिखाओ, उन्हींका चलने का रास्ता दिखाओ जो तुम्हारी कृपा-दृष्टि पाने के काबिल होगये हैं, जो तुम्हारी अप्रसन्नता के योग्य ठहरे, जो गलत रास्ते से चले हैं उनका रास्ता मुझे मत दिखाओ।

ईश्वर एक है, वह सनातन है, वह निरालम्ब है, वह अज है, अद्वितीय है, सारी सृष्टि को पैदा करता है, उसे किसी ने पैदा नहीं किया ।

जरतुश्ती गाथा

मजदा अत मोइ वहिश्ता
स्रवा ओस्चा श्योथनाचा वओचा।
ता—तू वहू मनंघहा
अशाचा इषुदेम स्तुतो
त्तमा का श्रथ्रा अहूरा फेरषेम्
वस्ना हइ श्येम् दाओ अहूम्

ऐ होरमज्द ! सर्वोत्तम धर्म के वचन और कर्म के विषय मुझे बता, जिससे मैं सच्ची राह पर रह सकूं और तेरी ही महिमा को गा सकूं। तू अपनी इच्छा के अनुसार मुझे चला। मेरा जीवन चिर नूतन रहे और वह मुझे स्वर्ग-सुख का दान करे।

भजन की धुन

रघुपति राघव राजा राम।
पतित पावन सीताराम॥
हरे राम, हरे राम, हरे राम हरे।
भजमन निशि दिनीं प्यारे॥
श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासुदेव।
राजा राम राम राम।
सीता राम राम राम।
जयराम जयराम जय जय राम।
श्री राम जयराम जय जय राम॥

राधाकृष्ण भज कुंजविहारी।
मुरलीधर गोवर्धनधारी ॥
सिय स्वामी की जय, प्यारे राघव की जय,
बोलो हनुमान कृपालु की जय जय जय।
रामधुन लागी गोपाल धुन लागी।
भजले भजले सीताराम।
मंगल मूरति सुन्दर श्याम ॥
ईश्वर अल्ला तेरे नाम।
सबको सन्मति दे भगवान् ॥
भजमन प्यारे राम-रहीम।
भजमन प्यारे कृष्ण करीम ॥
रघुपति राघव राजा राम।
पतित पावन सीताराम ॥

रामचरित-मानस : अयोध्या कांड

काम क्रोध मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्हके कपट दम्भ नहिं माया।
तिनके हृदय बसहु रघुराया ॥
सबके प्रिय सबके हितकारी।
दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी।
जागत-सोवत सरन तुम्हारी ॥

तुमहिं छांड़ि गति दूसरि नाहीं।
राम बसहु तिनके मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं पर नारी।
धन पराय विष तें विष भारी ॥
जे हरषहिं पर सम्पति देखी।
दुखित होंहि पर बिपति विसेखी ॥
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे।
तिनके मन सुभ सदन तुम्हारे ॥
स्वामि-सखा-पितु-मातु-गुरु, जिन्हके सब तुम तात।
मन-मंदिर तिन्हके बसहु, सिय सहित दोउ भ्रात ॥

बापू के प्रिय भजन

वैष्णव जन तो तेने कहिए

वैष्णव-जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे।
परदु:खे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोकमां सहुंने वंदे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच-काछ-मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे।
मोह-माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
राम नामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वण-लोभी ने कपट रहित छे, काम-क्रोध निर्वाया रे।
भणे नरसैयो तेनुं दरसन करतां, कुल एकोतेर तार्यां रे।

—नरसी मेहता

एकला चलो रे

यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे तबे एकला चलो रे,
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे।
यदि केउ कथा ना कय, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि सबाई थाके मुख फिराये, सबाई करे भय--
तबे परान खुले

ओ तुई मुख फुटे तोर मनेर कथा एकला बोलो रे।
यदि सबाई फिरे जाय, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि गहन पथे जाबार काले केऊ फिरे ना चाय —
तबे पथेर कांटा
ओ, तुई रक्त माखा चरन तले एकला दलो रे।
यदि आलो ना धरे, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि झड़ बादले आंधार राते दुआर देय धरे—
तबे बज्रानले
आपन बुकेर पांजर ज्वालिये निये एकला जलो रे।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हरिनो मारग

हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने;
परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वलती लेवुं नाम जोने।
सुत-वित-दारा शीश समरपे, ते पामे रस पीवा जोने;
सिंधु मध्ये मोती लेवा मांही पड्या मरजीवा जोने।
मरण आंगमे ते भरे मूठी, दिलनी दुग्धा वामे जोने;
तीरे, ऊभा जुए तमासो, ते कोडी नव पामे जोने।
प्रेम-पंथ पावकनी ज्वाला, भाली पाछा भागे जोने;
मांही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने।
माथा साटे मोंघी वस्तु, सांपडवी नहि सहेल जोने;
महापद पाम्या ते मरजीवा, मूकी मननो मेल जोने।
राम-अमलमां राता-माता पूरा प्रेमी परखे जोने;
'पीतम' ना स्वामीनी लीला ते रजनी-दन नरखे जोने।

—प्रीतम

ऐसो को उदार…?

ऐसो को उदार जग माहीं ।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर,
राम सरिस कोऊ नाहीं । ऐसो०

जो गति जोग, बिराग, जतन करि,
नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।
सो गति देत गीध-सबरी कहँ,
प्रभु न बहुत जिय जानी । ऐसो०

जो संपति दससीस अरपि करि,
रावन सिव कहँ लीनी ।
सो संपदा विभीषन कहँ अति,
सकुच सहित हरि दीनी । ऐसो०

'तुलसीदास' सब भांति सकलसुख,
जो चाहसि मन मेरो ।
तो भज राम काम सब पूरन,
करहिं कृपानिधि तेरो । ऐसो०

—तुलसीदास

अबकी टेक हमारी

अबकी टेक हमारी,
लाज राखौ गिरधारी ।।ध्रु०।।

जैसी लाज राखी अर्जुन की
भारत-युद्ध मँझारी।
सारथि है कैं रथ कौं हांक्यौ
चक्र-सुदर्शन-धारी।
भक्तन की टेक न टारी। अब०

जैसी लाज राखी द्रौपदी की
हौंन न दीन्हीं उघारी।
खैंचत-खैंचत दोउ भुज थाके
दुःसासन पचि हारी।
बढ़ायो चीर मुरारी। अब०

'सूरदास' की लाज राखो
अब को है रखवारी?
राधे-राधे स्यामा प्यारी
श्री वृषभान - दुलारी।
सरन तकि आयो तुम्हारी। अब०

—सूरदास

हरि, तुम हरो जन की भीर

हरि, तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी
तुम बढ़ायौ चीर।
भक्त-कारन रूप नरहरि,
धर्यौ आप सरीर।
हिरनकश्यप मारि लीन्हो,
धर्यौ नाहिंन धीर।
बूढ़ते गजराज राख्यौ
कियो बाहर नीर।
दास "मीरा" लाल गिरधर
दुःख नाहिंन पीर।

—मीरा

वन्देमातरम्

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्।
शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम्।
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्।
सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्।
सुखदाम् वरदाम् मातरम्।
वन्देमातरम्

—बंकिमचन्द्र

गांधीजी के आदर्श वाक्य

उपनिषदों के पावन मंत्रों और बुद्धवाणी की तरह बापू के आदर्श वाक्य भी सान्त्वना, प्रेरणा और कर्तृत्व शक्ति से भरे हुए हैं। मन-वचन के संयम से प्रदीप्त बापू की अमर वाक्यावली में भटकी हुई मानवता को राह पर लाने की अपूर्व मोहक शक्ति है। यहाँ उनके कुछ प्रसिद्ध आदर्श वाक्य उद्धृत किये जाते हैं :—

जहाँ प्रेम है वहीं भगवान है

"मैं इसे नम्रता से स्वीकार करता हूं कि चाहे मैं उतना सफल न होऊं, लेकिन मैं अपने व्यक्तित्व के रेशे-रेशे को प्रेम-साधना में डुबो देना चाहता हूं। मैं अपने प्रभु से साक्षात्कार करने के लिए व्यग्र हूं, मेरा प्रभु सत्यस्वरूप है, लेकिन अपनी साधना के आरम्भ में ही मैंने पहचान लिया था कि अगर मुझे जीवन का चरम सत्य पाना है तो मुझे प्रेम की हुकूमत के आगे सर झुका देना होगा।

"लेकिन हमें अपने प्रेम का विस्तार करना चाहिए। हमें अपने गांव को प्यार करना चाहिए, फिर अपने जिले को प्यार करना चाहिए, फिर देश और अन्त में हमें अपने को विश्व-प्रेम में लीन कर देना चाहिए।

"मेरे पास तो सिवा प्रेम के, किसी पर भी किसी तौर का अधिकार नहीं है। प्रेम देता है, कभी कुछ मांगता नहीं; प्रेम सदा दुःख सहता है, कभी दुःख देता नहीं, कभी बदला नहीं लेता।

"जहां प्रेम है, वहीं भगवान है।"

ध्यानयोग के बजाय कर्मयोग

"भगवान् ने मनुष्य को कर्म करके अपना जीवन बसर करने के लिए बनाया है। जो कर्म नहीं करता और सम्पत्ति का उपभोग करता है, वह चोर है। अगर हम सब अपनी रोटी के लिए मेहनत करें, केवल रोटी के लिए, तो बहुत काफी उत्पादन होगा, बहुत सा समय भी बच जायगा। तब न रोग होगा, न दरिद्रता। मनुष्य काम करेगा, मगर वह काम विनाश का नहीं होगा। वह काम प्रेम का होगा, सृजन का होगा, उस समय न कोई बड़ा होगा न छोटा, न कोई अमीर होगा न गरीब, न कोई सवर्ण होगा न शूद्र! सभी उस भगवान् के मजदूर होंगे। सभी उसके चाकर होंगे और उसके प्रेम के लिए मजदूरी करेंगे।

"कर्मयोग का महत्व तो कहां तक कहा जाय! अगर मैं भगवान् बुद्ध से बात कर सकता तो पूछता कि आपने ध्यानयोग के बजाय कर्मयोग का महत्व क्यों नहीं बताया? अगर मैं तुकाराम और ज्ञानदेव से मिलूं तो उनसे भी मैं यही सवाल पूछूं?"

विश्वास बड़ी चीज है

"यह तो वास्तव में विश्वास है जो हमें तूफानों के पार ले जाता है। यह विश्वास है जिसके सहारे हम समुद्रों को लांघ सकते हैं और पहाड़ों को उखाड़ सकते हैं। यह विश्वास अपने हृदय में रहने वाले भगवान् की चेतना के अलावा और कुछ भी नहीं है। जिसमें यह विश्वास है उसे फिर कुछ नहीं चाहिए।

"बिना विश्वास के यह सारी सृष्टि एक क्षण में नष्ट हो जायगी। विश्वास कोई नाजुक फूल नहीं है जो जरा से तूफानी मौसम में कुम्हला जाय। विश्वास तो अपरिवर्तनशील हिमालय की तरह है। कोई तूफान हिमालय को हिला नहीं सकता। मैं चाहता हूँ कि आप में से हर एक, भगवान् में वह अदम्य विश्वास जगाले।"

आशा का प्रकाश

"मैं तो अदम्य आशावादी हूँ और मेरी आशाओं का आधार यह है कि मुझे चरम विश्वास है कि मनुष्य की अहिंसात्मक शक्तियों का विकास किसी भी सीमा तक हो सकता है और इसीलिए मैंने अपनी आशाएं कभी नहीं खोईं। बहुत ही निराशा और अन्धकार के क्षणों में भी मेरे मन में आशा का प्रकाश जलता रहा है। मैं स्वयं उस आशा के प्रकाश को बुझाने में असमर्थ हूँ। मेरे अन्दर पराजय की कोई भावना नहीं है। मैं सारी दुनिया को प्रसन्न करने के लिए भी ईश्वर से विश्वासघात नहीं कर सकता।"

वर्ग-संघर्ष नहीं—मुहब्बत

"मैं हमेशा कहता रहा हूं कि श्रम और पूंजी, मजदूरों और मिल-मालिकों को एक दूसरे के सहायक और संरक्षक बनकर रहना चाहिए। वे सभी एक परिवार की तरह मिल-जुलकर मुहब्बत से रहें। मालिकों को केवल मजदूरों के आर्थिक नहीं, वरन नैतिक विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। पूंजीपति मजदूरों के उत्तरदायी संरक्षक बन कर रहें।

"मेरा सपना यह कदापि नहीं है कि मालिक लोग पूंजी का दुरुपयोग करें, मैं तो चाहता हूं कि उनका उपभोग सीमित कर दिया जाय ताकि दूसरों के अभाव की भी पूर्ति होती रहे। गरीबों को यह न महसूस होना चाहिए कि वे गुलाम हैं, वरन वे हमेशा यह समझें कि वे पूंजीपतियों या जमींदारों के बराबरी के हिस्सेदार हैं।

"विश्वास कीजिए कि अहिंसा पूंजीवाद का नाश करना चाहती है मगर पूंजीपति का नाश उसका उद्देश्य नहीं है।"

मशीनें व्यक्ति की नहीं, राष्ट्र की संपत्ति हों

"अगर किसी तरीके से सारी दुनिया से मशीनें गायब हो जातीं तो मुझे कोई दुख न होता। सबसे बड़ी चीज आदमी है, मशीनें जब उसके दिमाग पर चढ़ जाती हैं, उसका दिल कुचल देतीं हैं तो मैं मशीनों के खिलाफ हो उठता हूं।

"सिद्धान्ततया मैं सभी मशीनों को नष्ट करवा देता, लेकिन मशीनें रहेंगी, वे बिल्कुल नष्ट नहीं हो सकतीं। यह शरीर स्वयं

एक मशीन है, आत्मा की राह में बाधक है, लेकिन हम उसके बिना जीवित नहीं रह सकते। यही हाल मशीनों का है।

"लेकिन आज मशीनों का केन्द्रीकरण इस प्रकार का है कि वे एक व्यक्ति के पास सभी दौलत इकट्ठा कर देती हैं। मैं इसका विरोधी हूं। लेकिन बड़ी-बड़ी मशीनें (रेल आदि) जो जनता के हित की हैं उनका अस्तित्व रहेगा, पर वे व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर राष्ट्र की होनी चाहिए।"

सभ्यता या हैवानियत

"यह पागलपन जो दिनों-दिन अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाता जारहा है और फिर उनको पूरा करने के लिए दुनिया के कोने-कोने को खून से रंग रहा है। मुझे यह पागलपन नापसन्द है। अगर यही आज की सभ्यता है तो मैं कहूंगा कि यह इन्सान की नहीं, हैवान की सभ्यता है।

"एक दिन आरहा है जब कि वे लोग जो आज अपनी आवश्यकताएं बढ़ाने के लिए पागल होगये हैं, वे लोग अपने कदम पीछे हटायेंगे और गंभीरता से सोचेंगे—"यह हमने क्या किया?" सभ्यताएं आई हैं और चली गई हैं और बराबर मेरी इच्छा हुई है कि मैं पूछूं, "हमें क्या मिला?" पिछले ५० वर्ष के आविष्कार और खोज के बावजूद हमारी नैतिकता में एक अणुमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ।"

संसार की नजरों में गांधीजी

गांधीजी का यश हिन्दुस्तान की सीमा को लांघकर सारे संसार में दशों दिशाओं में व्याप्त होगया था। राजनीतिक स्वार्थों के कारण विश्व की बड़ी-बड़ी शक्तियां उनसे उलझती अवश्य रही हों, पर हृदय से सबने गांधीजी के कार्य के महत्व और उनकी शक्ति की सीमा को नमस्कार किया था। अपने महान् आदर्शों से गांधीजी ने संसार के हर जीवित महापुरुष का ध्यान अपनी ओर खींचा था। उनके जीवन काल में ही दुनिया में उनके लाखों प्रशंसक बन गये थे। उनकी मृत्यु ने तो संसार को हिला ही दिया। दुनिया के कोने-कोने से लोगों ने गांधीजी के प्रति अपने शोकोद्गार व्यक्त किये और उनकी राह को मानवता के लिए वरदान माना। यहाँ अपने पाठकों की जानकारी के लिए हम देश-विदेश के कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों के उद्गार उद्धृत कर रहे हैं:—

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के नेता

"गांधीजी भारत के एक महान् राष्ट्रवादी थे, किन्तु साथ-ही-साथ वह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के एक नेता थे। उनके उपदेशों और कार्यों ने लाखों व्यक्तियों पर गहरा प्रभाव डाला है। उनका

यह प्रभाव सरकारी कार्यों में ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्रों में भी दृष्टिगत होता था।"

—अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमैन

मानव-जाति के रक्षक

"उनके निधन से मानव-जाति का यह विश्वास अकस्मात् स्पष्ट होगया है कि वह इसी युग के नहीं, अपितु समस्त युगों के एक महानतम व्यक्ति थे और मनुष्यके रूपमें अवतरित होकर उन्होंने वर्तमान युग को कीर्तिमान बना दिया था। वह इस संसार के महानतम ही नहीं बल्कि सबसे प्रिय व्यक्ति भी थे। जनता के हृदय पर उनका अपरिहार्य अधिकार था; स्वभावतः उनकी शक्ति अपरिमित थी। उन्होंने अपने प्राण संसार के एक उच्चतम आदर्श मानव-मात्र को भ्रातृत्व और प्रेम की रज्जु में बांधने के लिए निछावर किये; इसलिए जबतक इस भूतल पर एक प्राणी भी बचा रहेगा, वह मानव-जाति के एक रक्षक के रूप में स्मरण किये जायंगे।"

—कम्यूनिटी गिर्जा, न्यूयार्क के मन्त्री,
रेवरेन्ड डाक्टर जान हेन्स होम्स

अत्यधिक नेक

"अधिक नेक होना भी बुरा है। सत्य को कहने और करने में गांधीजी कभी भयभीत नहीं होते थे।"

—जार्ज बरनार्ड शा

उनके उपदेश ही रक्षक हैं

"आज जब हम माताएँ हवाई जहाजों की घड़घड़ाहट, अणु बमों के विस्फोट और कीटाणु-युद्ध की भयंकरता से आतंकित जीवन बिता रही हैं, हमें महात्मा गांधी के सदुपदेशों का सहारा लेना चाहिए।"

—हब्शी महिला राष्ट्रीय कौंसिल की संस्थापिका
श्रीमती मेरी बेथ्यून

ईसा के बाद गांधी

"ईसा के बाद ईश्वर का सत्य रूप और किसी में इतना नहीं दिखाई दिया।"

—न्यूयार्क के सिनेटर चार्ल्स डबल्यू टोबी

अपर युग के व्यक्ति

"वह इस युग के एक अद्वितीय व्यक्ति थे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी और युग के हों।"

—श्री क्लेमेंट एटली

मानव-जाति की क्षति

"गांधीजी की मृत्यु मानव-जाति के लिए एक वास्तविक क्षति है। उसे प्रेम और सहिष्णुता के उन सिद्धांतों के सजीव प्रकाश की अत्यधिक आवश्यकता है जिसके लिए गांधीजी ने जन्म-भर प्रयत्न किया और अपना शरीर तक त्याग दिया।"

—लार्ड माउन्टबैटन

सुरक्षा-परिषद की प्रेरणा

"अहिंसा के रूप में उन्होंने इस संसार को एक महान् उपदेश दिया। यही वह सिद्धांत है जिससे हमारी संस्था को प्रेरणा मिलती है।"

—संयुक्त राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद के
अध्यक्ष श्री फरनांड वान लैंगेनहोव

संसार सदा स्मरण रखेगा

"कहने के लिए तो वह आकाश-दीप बुझ चुका है, किन्तु वास्तविक अर्थ में ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उनका यह उपदेश कि आत्मशक्ति दुर्गुण पर विजय पा सकती है, संसार सदा स्मरण रखेगा और उसकी पूर्ति के लिए उत्सुकतापूर्वक आकांक्षा करेगा।"

—लंका के प्रधानमन्त्री श्री सेनानायक

महानता नहीं मर सकती

"आज सारा संसार एक महान् नेता के निधन से शोकमग्न है। वह विश्ववंद्य थे और उन्होंने पद-पद पर मानव-जाति के आध्यात्मिक जीवन में बहुमूल्य योग दिया था। उनके संपर्क के कारण यह संसार श्रेष्ठतर बन गया है। इस अद्वितीय पुरुष की महानता उसकी मृत्यु के साथ नहीं मर सकती। अन्य महापुरुषों की भांति वह भी किसी एक देश के नहीं हैं; वह सभी जगह हम सबके हैं।"

—भारत-स्थित अमरीकी राजदूत डाक्टर हेनरी ग्रैडी

मेरा प्यारा उठ गया

"मैंने गांधीजी को कभी नहीं देखा। मैं उनकी भाषा नहीं जानता। मैं कभी उनके देश भी नहीं गया फिर भी मुझे ऐसा लग रहा है जैसे कोई मेरा ही प्यारा उठ गया हो।"

—फ्रांसीसी पत्र 'ले पापुलेयर' में श्री लियोन ब्लम के उद्गार

सर्वस्व त्यागी

"ऐसा कोई भी व्यक्तिगत त्याग नहीं जो महात्मा ने अपने देश-वासियों के कल्याण के लिए न किया हो।"

—हालैण्ड के प्रधान मन्त्री डाक्टर लुई बील

समस्त विश्व की क्षति

"यह क्षति केवल भारत की क्षति नहीं है। विश्व का एक ऐसा महान् नेता जाता रहा है जिसका प्रभाव उसकी मृत्यु के पश्चात् बहुत समय तक अक्षुण्ण रहेगा।"

—डी वलरा

अन्तरात्मा के प्रवक्ता

"महात्मा गांधी समस्त मानव जाति की अन्तरात्मा के प्रवक्ता थे।"

—जार्ज मार्शल

महान् आध्यात्मिक नेता

"एक महान् आध्यात्मिक नेता हम लोगों के बीच से उठ गया है। संसार को इस समय इनकी अनिवार्य आवश्यकता थी।"

—डा० हार्लिंगटन टांग [चीन]

महानेता

"हमारा स्वतन्त्रता संग्राम परवर्ती-काल में भारत की स्वाधीनता की लड़ाई के साथ-साथ चल रहा था और हमारी जनता ने भारतीय जनता को एक ही संघर्ष में जुटे हुए भाइयों की तरह माना है। जिस महानेता ने भारतीयों को वर्तमान स्वतन्त्रता की स्थिति में पहुँचाया वह आज नहीं रहा। हमारी यह प्रार्थना है कि अपने प्राणों की बलि द्वारा वह भारतीय जनता को शान्ति और भ्रातृत्व भावना के उस ध्येय तक पहुँचा सकेंगे जो उन्हें अपने प्राणों से भी प्यारी थी।"

—डी वैलरा

अन्तर्राष्ट्रीय दुर्घटना

"महात्मा गांधी की मृत्यु केवल राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय दुर्घटना है।"

—लेडी माउन्ट बैटन

शोकाभिभूत

"महात्मा गांधी की दारुण मृत्यु ने उन सभी राष्ट्रों को शोकाभिभूत कर दिया है, जो एक दूसरे से आध्यात्मिक सूत्र द्वारा बंधे हुए हैं।"

राबर्ट शूमैन [फ्रांस के प्रधान मन्त्री]

पैग़म्बर

"आधुनिक इतिहास में कोई भी इतनी क्रांतिकारी तथा पागलपन की घटना नहीं घटी, जितनी कि महात्मा गांधी की हत्या ! इस तरह की अराजकता समस्त तर्क-संगत बातों को रुकवाने वाली है। यह हत्या स्वतः हत्याकारी के विचारों के नष्ट होने की द्योतक है। गांधीजी उन व्यक्तियों और पैग़म्बरों में से एक हैं जो आने वाले युग का अपने युग में प्रतिनिधित्व करते हैं।"

—जनरल मैक आर्थर

विरल व्यक्तित्व

"मैं समझता हूं कि विश्व के इतिहास में ऐसे लोग बिरले ही मिलेंगे जिन्होंने अपने व्यक्तिगत चरित्र और आदर्श के बल पर अपनी संततियों की विचारधारा पर इतना गहरा प्रभाव डाला हो।"

—लार्ड हैलीफैक्स

विश्व आलोकित रहेगा

"इस पृथ्वी का एक प्रकाश बुझ गया, किन्तु एक ऐसा नक्षत्र देदीप्यमान हो उठा है जो जन्म-जन्मान्तर तक विश्व को आलोकित करता रहेगा।"

—लन्दन के न्यूज क्रानिकल पत्र में श्री नार्मन क्लिफ़ के उद्गार

हिन्दू जाति के महानतम व्यक्ति

पाकिस्तान

"मरने के बाद सब वाद-विवाद समाप्त होजाते हैं। हमारा राजनैतिक मतभेद चाहे कुछ भी रहा हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह हिन्दू जाति के एक महानतम व्यक्ति थे। वह एक ऐसे नेता थे जिन्हें समस्त हिन्दू विश्वास और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। भारतीय संघ की अपार क्षति हुई है और इस अवसर पर ऐसे व्यक्ति के चले जाने से जो स्थान रिक्त होगया है उसे भरना कठिन होगा।"

—मुहम्मद अली जिन्ना

एकमात्र प्रकाश

"निविड़तम अन्धकार के इन दिनों में हमें मार्ग दिखाने वाले वही एकमात्र प्रकाश थे।"

—खान अब्दुलग़फ़ार खां

सबसे शक्तिमान और महानतम

"इस संसार का सबसे शक्तिमान और महानतम व्यक्ति जाता रहा।"

—खान अब्दुल क़यूम खां

जीवन का प्रकाश बुझ गया

भारत

"हमारे जीवन का प्रकाश बुझ गया और चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा है। प्रकाश बुझ गया, यह कह तो दिया मैंने,

किंतु वास्तव में मैंने भूल की, क्योंकि वह तेजोमय प्रकाश कोई साधारण प्रकाश नहीं था। जो प्रकाश इस देश को इतने वर्षों से प्रज्ज्वलित करता रहा है, वह अभी बहुत समय तक इसे आलोकित करता रहेगा और आज से सहस्रों वर्ष बाद भी इस देश में दिखाई देगा। सच पूछिए तो समस्त संसार उसका दर्शन करेगा, और असंख्य प्राणी उससे शांति और सान्त्वना ग्रहण करेंगे। वह प्रकाश केवल वर्तमान का ही द्योतक नहीं था; वह शाश्वत सत्य का प्रतीक था। अपने अमर सत्य की ज्योति लिये वह जीवित मानव सन्मार्ग की ओर इंगित करता हुआ, हमें भूलों से बचाता हुआ और देश को स्वतंत्रता की ओर ले जाता हुआ, सदा हमारे साथ रहा।······वह महान दुर्घटना एक प्रतीक बनकर, हमें जीवन की बड़ी-बड़ी बातों को स्मरण रखने और छोटी-छोटी बातों को भुला देने का संकेत करती है। यदि हम यह बातें याद रखेंगे तो निश्चय ही उससे हमारा और हमारे देश का कल्याण होगा।"

जवाहरलाल नेहरू

उनका उत्तराधिकार

"तो सब कुछ समाप्त हो लिया ' संसार सूना-सूना, बड़ा ही बीहड़ लग रहा है। उनके प्राण-पखेरू शुक्रवार, ३० जनवरी को सन्ध्या समय ५ बजे उड़े थे। कितना अच्छा हो कि प्रतिदिन इसी बेला में भारत के नर-नारी बापू के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी हुई उत्सुक जनता की कल्पना किया करें और बापू की प्रिय

आकृति का स्मरण करते हुए यह चिंतन किया करें कि उनकी मनोकामना क्या थी और वह किस ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रार्थना किया करते थे! ...हमें यह बात साफ़-साफ़ और स्थायी रूप से समझ लेनी चाहिए कि सद्भावना केवल सद्भावना से ही प्राप्त हो सकती है। दुर्गुण पर विजय पाने का एकमात्र मार्ग वही है, जो हमारे प्यारे नेता ने हमें दिखाया था। आग तेल डालने से नहीं बुझ सकती; हमें तो प्रेम के उस बुद्धिमत्तापूर्ण आदर्श को स्मरण रखना चाहिए जो हमारे दिवंगत नेता हमारे लिए उत्तराधिकार-स्वरूप छोड़ गये हैं।"

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

महान् भविष्यद्रष्टा

गांधीजी की शक्ति एक अध्यात्मिक शक्ति थी। राजनीति में, धर्म में, सामाजिक सुधारों में, वस्तुतः ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें उनका व्यक्तित्व न दिखाई देता हो। वह एक महान् भविष्यद्रष्टा थे; वह अपने युग से बहुत आगे तक देखा करते थे। जिस समय हम छोटी छोटी बातों और छोटे-छोटे झगड़ों में उलझे पड़े थे, वह महान् भारत की कल्पना कर रहे थे।"

—सरदार बल्लभभाई पटेल

जन्म-जन्मांतर तक अमर

"उनके महान् कार्य और उनके व्यक्तित्व का असीम सौंदर्य उनकी स्मृति जन्म-जन्मान्तर तक अमर बनाने के लिए पर्याप्त हैं।"

—राजेन्द्रप्रसाद

नैतिक नियमों के विश्वासी

"उन्होंने संसार के सामने यह सिद्ध कर दिखाया कि जाति-प्रेम और मानवीय प्रेम में कोई विरोध नहीं। उनकी दृष्टि में भारतीय-अभारतीय, हिन्दू, मुसलमान, सिख, सभी समान थे। उनके लिए केवल एक मानवता थी, केवल एक नियम था और वह था नैतिक नियम, जिसमें सारा संसार बंधा और गुंथा हुआ है।" —आचार्य कृपलानी

सम्राटों से भी अधिक प्रभावशाली

"क्या कारण था कि उस छोटे-से कृशकाय व्यक्ति का, जिसका शरीर बालकों-जैसा था, जो सन्यासियों-सदृश जीवन-यापन करता था और अपने व निर्धनों के जीवन में अधिक तारतम्य स्थापित करने के लिए स्वेच्छा से अल्पाहार किया करता था, समस्त संसार पर—जिसमें उससे श्रद्धा और घृणा करने वाले दोनों ही थे—सम्राटों से भी अधिक प्रभाव था? इसका कारण यह था कि न तो वह सराहना के भूखे थे. न उन्हें निन्दा की चिन्ता थी। उन्हें केवल सन्मार्ग और उन आदर्शों की चिन्ता थी, जिनका वह दूसरों को उपदेश देते थे और स्वयं पालन भी करते थे। अहिंसा और मानवीय लोभ के कारण घटी भयंकरतम दुर्घटनाओं के मध्य भी जब संसार का दूषण युद्ध-क्षेत्रों में सूखी पत्तियों और सूखे फलों की तरह बिखरा पड़ा था, अहिंसा के सिद्धांत के प्रति उनका विश्वास था कि चाहे समस्त संसार की हत्या क्यों न होजाय, उनकी अहिंसा ही विश्व की

नयी संस्कृति का वास्तविक आधार होगी। उन्हें विश्वास था कि जो अपने जीवन को बचाने का प्रयत्न करेगा वह उसे खो बैठेगा और जो अपने जीवन का दान करेगा वह उसे प्राप्त कर लेगा।"

—सरोजिनी नायडू

आदर्श कर्मयोगी

"गांधीजी गीता के आदर्श कर्मयोगी थे। पीड़ितों और दुःखियों के लिए उनके हृदय में अपार सहानुभूति थी। जैसे-जैसे सदियां बीतती जायेंगी, गौतम, बुद्ध और ईसा की भांति उनका प्रभाव भी बढ़ता जायगा और निखिल विश्व को पवित्र बनाता रहेगा।"

—कैलाशनाथ काटजू

हम सबके पिता

"नेता ही नहीं, वह हम सबके पिता थे। तभी तो हम उन्हें बापू कहा करते थे। आज हम अनाथ हैं।"

—राजकुमारी अमृतकौर

सत्य और न्याय का प्रकाश

"भारत रो! तब तक रो, जबतक तेरा हृदय फट न जाय, क्योंकि जो प्रकाश सत्य और न्याय का आलोक फैलाता था, जो प्रकाश मानवों के लिए गहन प्रेम और परित्यक्तों व असहायों के लिए दया व ईश्वरीय सहानुभूति की किरणें बिखेरता था, वह अब बुझ गया।"

— हसन शहीद सुहरावर्दी

अब एक हजार वर्ष लगेंगे

"गांधीजी में शंकराचार्य, माधवाचार्य और रामानुज तीनों सन्निहित थे। ऐसे व्यक्ति के पुनः अवतरित होने में सम्भवतः एक हजार वर्ष लग जायं।"

—मद्रास के भूतपूर्व शेरिफ श्री रामस्वामी नायडू

जीवन की प्रमुख तिथियाँ

२ अक्तूबर,	१८६९—	जन्म
... ...	१८८३—	विवाह
४ सितंबर,	१८८८—	बैरिस्टरी के लिए विलायत-यात्रा
१२ जून,	१८९१—	बैरिस्टर होकर भारत लौटे
... अप्रेल,	१८९३—	दक्षिण अफ्रीका को
... ...	१९०३—	"ट्रांसवाल ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन" की स्थापना
१ अगस्त,	१९०७—	"एण्टी एशियाटिक ला" के विरुद्ध आन्दोलन की प्रतिज्ञा
... दिसंबर,	१९०७—	जोहांसवर्ग में एमीग्रेशन कानून के विरुद्ध सभा में भाषण और पहली बार गिरफ्तार
... फरवरी,	१९०८—	जेल में स्मटस् से समझौता
... जनवरी,	१९१४—	दक्षिण अफ्रीका की सरकार से संधि
३० जून,	१९१४—	सत्याग्रह का अन्त
... जनवरी,	१९१५—	भारत में आगमन
२५ मई,	१९१५—	अहमदाबाद (कोचरव) में सत्याग्रह-आश्रम की स्थापना
... अप्रेल,	१९१७—	चम्पारन में गिरफ्तारी